वैष्णव सदाचार

गोपीनाथ बुक्स

श्री श्री गुरुगौराङ्ग जयतः

वैष्णव सदाचार

.... निश्चय ही भक्ति की प्रक्रिया सर्वाधिक शक्तिशाली है।
श्रीचैतन्य चरितामृत में श्रीचैतन्य महाप्रभु द्वारा श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी को दी गई आज्ञा का स्मरण करें.......

"सामान्य लोगों के समान, व्यर्थ के प्रपञ्च (वार्तालाप) न करें। अत्यधिक स्वादिष्ट व्यंजन न खायें, ऐश्वर्यशाली वस्त्र न पहनें।"

"स्वयं सम्मान की अपेक्षा न करते हुए दूसरों को सदा सम्मान दें। सतत् भगवान् श्रीकृष्ण के पवित्र नामों का कीर्तन करें एवं अन्तःकरण से सदा वृन्दावन के भाव में श्री श्रीराधा-कृष्ण की सेवा करें।"

गोपीनाथ बुक्स

इस्कॉन, श्री श्रीराधा गोपीनाथ मंदिर, ७ के. एम. मुन्शी मार्ग,
चौपाटी, मुंबई ४०० ००७. दूरध्वनि : (०२२) २३६६७२२८

नमः ॐ विष्णुपादाय कृष्णप्रेष्ठाय भूतले।
श्रीमते भक्तिवेदान्त स्वामीन् इति नामिने ॥

नमस्ते सारस्वते देवे गौरवाणी प्रचारिणे।
निर्विशेष शून्यवादि पाश्चात देश तारिणे ॥

"मैं कृष्णकृपाश्रीमूर्ति ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी श्रील प्रभुपाद को सादर प्रणाम करता/ करती हूँ, जो भगवान् श्रीकृष्ण के चरणकमलों का आश्रय लेने के कारण भगवान् को अत्यन्त प्रिय हैं।"

"हे गुरु महाराज, (श्रील प्रभुपाद) आपको मेरा सादर प्रणाम है। आप श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी के सेवक हैं और (उनकी आज्ञानुसार) श्रीचैतन्य महाप्रभु के संदेश का प्रचार करते हुए आपने निर्विशेष एवं शून्यवाद से ग्रस्त पाश्चात्य जगत् का उद्धार किया है।"

प्रथम प्रकाशन : २००० प्रति, श्रील वृन्दावनदास ठाकुर आविर्भाव, जून २००५

© सर्वाधिकार सुरक्षित : गोपीनाथ बुक्स, श्रीतुलसी ट्रस्ट, मुंबई

मुद्रक : गोलोक मुद्रण सेवा, विष्णुलोक दास, श्री सोमनाथ मंदिर, वेंगुर्ला मार्ग, गाँव व पोस्ट उचगांव, तहसील व जि. बेलगाम ५९१ १२८ दूरभाष : ०८३४११०५४१५
e-mail: vishnulok@yahoo.com

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें,

१. गोलोक मुद्रण सेवा
२. अंतर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ
श्री श्रीराधा गोपीनाथ मंदिर
७, के.एम. मुन्शी मार्ग, चौपाटी,
मुंबई - ४०० ००७ दूरध्वनि : (०२२) २३६६ ७२२८
e-mail: rgsevaka@pamho.net

अनुक्रमणिका

प्रस्तावना

भाग 1

१. वैष्णव सदाचार का महत्त्व १
२. कृष्णभावना का सार–वैष्णव आचार २

भाग 2

१. मंदिर में पालन किये जाने वाले नियम ३
क. विनम्रता ३
ख. प्रणाम-पद्धति ३
ग. अर्चविग्रहों पर ध्यान करना ५
घ. मंदिर में बैठने की विधि ६
च. बोलना / बातें करना ७
छ. वस्त्र एवं वेशभूषा ८
१. तिलक ८
२. केश (बाल) ९
३. कण्ठी माला १०
४. दाढ़ी एवं मूछें ११
ज. स्वच्छता एवं स्वास्थ्य तत्त्व ११
झ. सामान्य व्यवहार १२
ट. प्रवचन वर्ग १३
ठ. आरती १४
ड. महाप्रसाद अथवा निर्माल्य १५
१. फूल अथवा हार १५
२. चरणामृत १५
३. घी का दीपक १६
४. भगवान् के वस्त्र १६
५. महाप्रसाद १६
२. अन्य नियम १७
क. पवित्र वस्तुओं का रख-रखाव १७
ख. व्यक्तिगत आदतें १८
ग. कीर्तन २०
घ. नृत्य २१
च. बोलना २३
छ. प्रचार २४
३. रसोईघर २६

भाग 3

प्रसाद सेवन और वितरण २९
क. प्रसाद वितरण ३०
ख. प्रसाद सेवन ३१
ग. खाने एवं पानी पीने के निमय ३२
घ. प्रसाद की मात्रा ३२
च. प्रसाद के बाद ३३

भाग 4

भक्तों से सम्बन्ध ३५
१. भक्तों के तीन स्तर ३५
२. आध्यात्मिक गुरु से व्यवहार ३५
३. वरिष्ठ वैष्णवों से व्यवहार ३६

४. गुरु-बंधु/ बहन से व्यवहार ३७
५. वैष्णव सम्बोधन ३८
६. अन्य भक्त ३८
७. वैष्णवों को सामान्य भौतिक
दृष्टि से न देखें ३८
८. वैष्णवों का शरीर एक मंदिर है ३९
९. वैष्णवों की कृपा आवश्यक ३९
१०. वैष्णवों में प्रेम का व्यवहार ३९
११. वैष्णव अपराध ४०
१२. वैष्णवों की गलतियाँ सुधारना ४०
१३. माताओं (स्त्रियों) से व्यवहार ४१
१४. अतिथियों से व्यवहार ४१
१२. अभक्तों से व्यवहार ४२

भाग ५

साधना ४३
१. जप ४३
२. नियामक तत्त्व ४९
३. सत्सङ्ग ४९
४. असत्सङ्ग त्याग ५०
५. पुस्तकों का अध्ययन ५१
६. सेवा ५१
७. अर्चविग्रहों की सेवा ५१
८. तपस्या ५३
९. अनुकूल और प्रतिकूल नियम ५४
१०. ब्राह्मण ५५
११. समय का महत्व ५५

भाग ६

यात्रा ५७

परिशिष्ट

१. तिलक लगाने की विधि ६२
२. प्रेमध्वनि ६४
३. भोग अर्पित करना ६५
४. प्रसाद प्रार्थना ६६
५. पञ्चतत्त्व मंत्र का महत्व ६७
६. अतिथि सेवा ६८
७. दस नाम-अपराध ७०
८. आरती ७१
९. तुलसी आरती ७४
१०. धाम के प्रति दस अपराध ७५

भाग ७

गृहस्थ आश्रम ७७
१. गृहस्थ आश्रम का महत्त्व एवं उद्देश्य ७७
२. गृहस्थ जीवन के कर्तव्य एवं
उत्तरदायित्व ७७
३. स्त्रियों का सम्मान ८१
४. पति के कर्तव्य एवं दायित्व ८३
५. पत्नी के कर्तव्य ८४
६. गृहस्थ आश्रम में सफल होने की कुंजी ८६

संस्कार ८७

प्रस्तावना

श्री चैतन्य चरिमृत में श्रीचैतन्य महाप्रभु कहते हैं, "वैष्णव सदाचार का पालन वास्तव में एक श्रृङ्गार (आभूषण) है जो भक्तों को भगवान् और संसार की दृष्टि में सुन्दर और आकर्षक बनाता है। इसलिए सभी भगवद्भक्तों को वैष्णव सदाचार एवं आदर्श जीवन पद्धति के नियमों में कुशल होना अत्यावश्यक है।

वैष्णव सदाचार के विषय में जानकारी अनेकानेक ग्रंथों में बिखरी हुई थी इसलिए हमनें उन्हें एक छोटी एवं सरल भाषा वाली पुस्तक में एकत्रित करने की आवश्यकता का अनुभव किया। यह पुस्तक न केवल वैष्णव सदाचार के मूलभूत तत्त्वों का वर्णन करेगी अपितु हमारे भारतीय केंद्रों में उठने वाली विभिन्न समस्याओं और मुद्दों पर भी प्रकाश डालेगी।

उपर्युक्त आशय की पूर्ति करने और भक्तों को वैष्णव सदाचार का एक प्रामाणिक संस्करण उपलब्ध कराने की दिशा में यह हमारा नम्र प्रयास है।

परम पूज्य श्रील राधानाथ स्वामी महाराज की विशेष प्रेरणा एवं प्रोत्साहन के कारण ही इस पुस्तिका को प्रकाशित करना सम्भव हुआ है। अनेकानेक वैदिक ग्रंथों में से इस प्रकार की सामग्री एकत्र करके इस पुस्तक का प्रकाशन करने की मूल कल्पना उनकी ही है। भक्तों को इसके लिए प्रोत्साहन देकर यह कार्य करवाने में वे ही कारणीभूत प्रेरणा के स्रोत हैं। इसके अलावा अनेक वर्षों तक भक्त एवं गुरु रहने के कारण उनके अनुभवों के दिव्य एवं अनमोल उपदेश भी हमें मिले हैं। इसी प्रकार हमें उनका मार्गदर्शन और सान्निध्य मिलता रहे इसके लिए हम भगवान् से प्रार्थना करते हैं।

इस पुस्तिका के संकलन एवं मुद्रण के बारे में अपनी सलाह एवं राय देकर अनेक भक्तों ने भी हमारे लिए अपना बहुमूल्य समय और शक्ति व्यय की है। इस पुस्तिका के प्रकाशन में उनकी भूमिका भी महत्वपूर्ण होने के कारण हम उनके आभारी हैं।

इस कलहपूर्ण युग में स्वर्णावतार श्रीचैतन्य महाप्रभु और कृष्णकृपाश्रीमूर्ति श्री श्रीमद् ए.सी.भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के दिव्य आन्दोलन को बढ़ाने में भक्तों को यह पुस्तक सहायक सिद्ध हो, यही हमारी अपेक्षा है।

—श्री श्री गुरु गौराङ्गो जयतः

भाग १

१. वैष्णव सदाचार का महत्त्व.

वैष्णव सदाचार सम्बन्धित यह पुस्तिका भक्तिरसामृत सिंधु, उपदेशामृत और श्रील प्रभुपाद द्वारा लिखित अन्य पुस्तकों, उनके पत्रों, उनके संभाषणों से संकलित की गई है।

भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु वैष्णव सदाचार सम्बन्धी उपदेश देते हुए श्रील सनातन गोस्वामी से कहते हैं–

यद्यपिओ तुमि हउ जगत-पावन।
तोमा-स्पर्शे पवित्र हय देव-मुनि-गण॥
तथापि भक्त-स्वभाव—मर्यादा-रक्षण।
मर्यादा-पालन हय साधुर भूषण॥

(श्रीचैतन्य चरितामृत अन्त्य ४.१२९-१३०)

"हे सनातन! यद्यपि तुम सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का उद्धार कर सकते हो और देवतागण भी तुम्हारे स्पर्श से शुद्ध हो जाते हैं, फिर भी वैष्णव आचार का पालन एवं उनका रक्षण करना यह भक्त का एक गुण है। वैष्णव आचार का पालन करना यह भक्त का सच्चा आभूषण है।"

मर्यादा-लङ्घने लोक करे उपहास।
इहलोक, परलोक—दुई हय नाश॥

(श्रीचैतन्य चरितामृत, अन्त्य ४.१३१)

"जो भी वैष्णव सदाचार का उल्लंघन करता है सम्पूर्ण जगत् उसका उपहास करता है और इस प्रकार इस लोक और परलोक, दोनों ही में वह नष्ट हो जाता है।"

इसलिए श्रीचैतन्य महाप्रभु ने वृंदावन के छह गोस्वामियों को पाँच महत्वपूर्ण उपदेश प्रदान किये। उन पाँच उपदेशों के आधार पर ही अंतर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ के बढ़ते प्रचार हेतु नियमों की रचना की गई है। ये नियम निम्नलिखित हैं–

१) सभी शास्त्रों का सूक्ष्म रूप से अध्ययन करना एवं यह प्रतिपादित करना कि सभी शास्त्रों का मूल सार भक्ति है।

२) भगवान् श्रीकृष्ण की वृंदावन लीलास्थलियों को खोजना तथा वृन्दावन धाम का इस

रूप में निर्माण करना जिससे सम्पूर्ण विश्व के लोग वहाँ आकर शरण लें एवं प्रोत्साहित हों।

३) भगवान् श्रीकृष्ण के सुन्दर मंदिरों का निर्माण करना और अर्चाविग्रहों की स्थापना करके योग्य अर्चना पद्धति के विषय में सम्पूर्ण देश का मार्गनिर्देशन करना।

४) अपने स्वयं के आचरण से सिखाना कि वैष्णव कैसा हो, तथा वैष्णवों के शिष्टाचार के उदाहरण को प्रस्तुत करना। श्रीचैतन्य महाप्रभु के अनुसार यह अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। केवल शास्त्रों में निपुण होना इतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना वरिष्ठ भक्त, कनिष्ठ भक्त, भगवान् और बद्धजीवों के साथ योग्य व्यवहार की जानकारी होना।

५) अपनी रचनाओं एवं उदाहरण से यह दिखाना कि एक वैरागी का जीवन कैसा होना चाहिए।

१. कृष्णभावना का सार—वैष्णव आचरण

१. भक्तों का जीवन "सादा जीवन उच्च विचार" के तत्त्व पर आधारित होना चाहिए।

२. भक्तों का जीवन कैसा हो? इसके बारे में अनेक नियम एवं तत्त्व हैं परन्तु उन सबका उद्देश्य यह है कि वे सभी एक मूलभूत नियम "निरन्तर भगवान् श्रीकृष्ण का स्मरण और कभी भी उनका विस्मरण न होना" की पूर्ति हेतु सहायक होने चाहिए। यह नियम सर्वोच्च है तथा सभी नियम इसके अधीन हैं।

३. अंतःकरण में वैष्णव गुलाब की पंखुड़ी के समान कोमल होते हैं और साथ ही साथ वज्र के समान कठोर होते हैं।

४. वैष्णव 'अदोषदर्शी' होते हैं अर्थात् वे कभी भी दूसरों के दोष नहीं देखते। वैष्णव केवल दूसरों की स्तुति सुनते हैं, दोष नहीं।

५. सदाचार (सत्य आचरण) के बिना कोई भी सफल नहीं हो सकता।

६. शिष्टाचार के बिना यदि किसी ने वेदों के सभी अङ्गों का अध्ययन भी क्यों न किया हो, फिर भी वह शुद्ध नहीं हो सकता।

७. शिष्टाचार का पालन न करने वाला यदि सभी शास्त्रों में पारंगत वैष्णव बनता है तो भी मृत्यु के समय उसका समस्त ज्ञान नष्ट हो जाता है।

८. वैष्णव आचरण का त्याग करना निश्चित रूप से स्वयं के आध्यात्मिक जीवन का अन्त करने के समान है।

९. अच्छा आचरण यश, ऐश्वर्य, आयु आदि को बढ़ाता है एवं सभी अमङ्गलों का नाश करता है।

१०. श्रील प्रभुपाद कहते हैं, "वैष्णव की क्या पहचान है?...वह एक सभ्य व्यक्ति होता है।"

भाग २

१. मंदिर में पालन किये जाने वाले नियम

क. विनम्रता:

प्राचीन काल में राजा-महाराजा पालकी में यात्रा करते थे। मंदिर के सबसे महत्त्वपूर्ण नियम के अनुसार, मंदिर में कोई भी पालकी में, वाहन में अथवा पैरों में जूते-चप्पल पहनकर प्रवेश न करें। इसके पीछे उद्देश्य यह है कि हमारी सामर्थ्य, पात्रता अथवा सामाजिक स्थिति कितनी भी श्रेष्ठ क्यों न हो हमें अपनी राजसी कृति अर्थात् स्वामी अथवा भगवान् बनने की प्रवृत्ति का त्याग करना चाहिए। भक्तों के सङ्ग में, विशेषतः मंदिर में 'दासानुदास' की ही भावना होनी चाहिए।

ख. प्रणाम पद्धति:

हरिभक्तिविलास में दण्डवत् प्रणाम करने की प्रक्रिया का वर्णन आता है।

दण्डवत् अथवा अष्टांग प्रणाम

अपने शरीर के आठ अंगों–दो पैर, दो घुटने, छाती, दो हाथ और मस्तक–द्वारा अष्टांग प्रणाम किया जाता है।

आपके हाथ पूर्ण रूप से मस्तक के आगे होने चाहिए। उन्हें छाती या मस्तक के नीचे न रखें।

पञ्चांग प्रणाम

१ पञ्चांग प्रणाम अर्थात् शरीर के पाँच अंगों–दो घुटने, दो हाथ और मस्तक–द्वारा प्रणाम।

२) दण्डवत् करते समय पहले गुरु प्रणाम मंत्र, श्रील प्रभुपाद प्रणति एवं तत्पश्चात् वेदी पर उपस्थित भगवान् के लिए प्रणाम मंत्रों का उच्चारण करें।

३) प्रातःकाल अथवा दिन में जब भी मंदिर में जायें (यदि उस समय भगवान् जागे हुए हों) तो उन्हें दण्डवत् प्रणाम करें। शास्त्रों में वर्णन है कि जिस समय भगवान् विश्राम कर रहे हों अथवा स्नान कर रहे हों उस समय उन्हें न तो दण्डवत् करना चाहिए और न ही उनकी प्रदक्षिणा करनी चाहिए

४) वेदी (ऑल्टर) से थोड़ा-सा अन्तर रखकर ही दण्डवत् करें। गर्भगृह में दोनों हाथ जोड़कर मन में प्रणाम मंत्र एवं महामंत्र का उच्चारण करें।

वैष्णव आदर

बृहन्नारदीय पुराण में उल्लेख है कि कुछ विशेष परिस्थितियों में हमें वैष्णवों को दण्डवत् अर्पित नहीं करना चाहिए। जैसे जब वे स्नान कर रहे हों, फूल तोड़ रहे हों, पानी ला रहे हों अथवा प्रसाद ग्रहण कर रहे हों।

ऐसी कठिन परिस्थितियों में हम वैष्णवों को मन में भी प्रणाम अर्पित कर सकते हो। योग्य परिस्थिति होने पर पूर्ण दण्डवत् अर्पित करें।

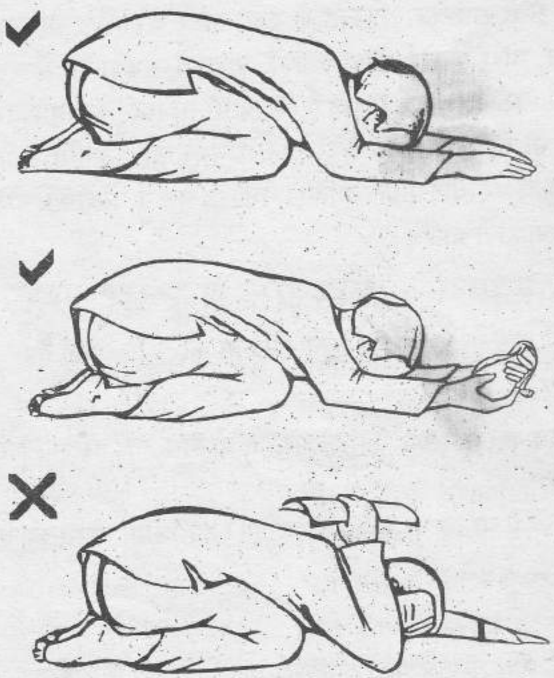

मंदिर में प्रणाम

मंदिर में प्रवेश करने के बाद सबसे पहले निम्नलिखित प्रार्थना करते हुए उपस्थित वैष्णवों को पंचांग (पाँच अङ्गों सहित) प्रणाम अर्पण करना चाहिए।

वाञ्छा कल्पतरूभ्यश्च कृपा सिन्धुभ्य एव च।
पतितानां पावनेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमो नमः ॥

"मैं भगवद्भक्त वैष्णवों को सादर प्रणाम करता हूँ जो कल्पवृक्ष के समान प्रत्येक की इच्छा पूर्ण करते हैं, जो दया के सागर हैं एवं पतितों का उद्धार करते हैं।"

तत्पश्चात् श्रील प्रभुपाद को अपने बाएँ अङ्ग की ओर रखते हुए दण्डवत् प्रणाम करें एवं निम्नलिखित प्रणति मंत्र का उच्चारण करें।

नमः ओउम् विष्णुपादाय कृष्ण प्रेष्ठाय भूतले।
श्रीमते भक्तिवेदान्त स्वामिनिति नामिने ॥

नमस्ते सरस्वती देवे गौर वाणी प्रचारिणे।
निर्विशेष शून्यवादी पाश्चात्य देश तारिणे ॥

"मैं कृष्णकृपाश्रीमूर्ति ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद को सादर प्रणाम करता हूँ, जो भगवान् श्रीकृष्ण के चरणकमलों का आश्रय लेने के कारण भगवान् को अत्यन्त प्रिय हैं। हे गुरु महाराज (श्रील प्रभुपाद) हमारा सादर प्रणाम स्वीकार करें। आप श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी के प्रिय सेवक हैं और आपने (उनकी आज्ञानुसार) श्रीचैतन्य महाप्रभु के संदेश का प्रचार करते हुए निविर्शेष और शून्यवाद से ग्रसित पाश्चात्य जगत् का उद्धार किया है।"

(स्त्रियों को सदैव पञ्चाङ्ग प्रणाम करना चाहिए तथा पुरुषों को दण्डवत् प्रणाम अर्पित करना चाहिए।

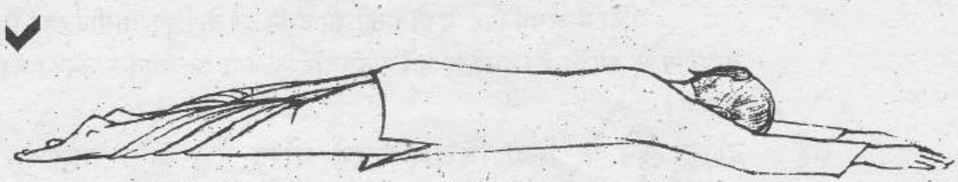

इसके बाद अर्चाविग्रह के निकट जाकर अर्चाविग्रह को अपने बाएँ अङ्ग की ओर रखकर अष्टाङ्ग प्रणाम (दण्डवत्) करें एवं गुरु प्रणाम मंत्र, श्रील प्रभुपाद प्रणति, पञ्चतत्त्व प्रणाम मंत्र तथा हरे कृष्ण महामंत्र का उच्चारण करें।

श्री गुरु प्रणाम मंत्रः-
नमः ओउम् विष्णुपादाय कृष्ण प्रेष्ठाय भूतले।
श्रीमते (गुरु का नाम) स्वामिनिति नामिने॥

पञ्चतत्त्व प्रणाम मंत्रः-
(जय) श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु नित्यानन्द।
श्रीअद्वैत गदाधर श्रीवासादि गौरभक्त वृन्द॥

हरे कृष्ण महामंत्रः-
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

एक हाथ से प्रणाम करना निषिद्ध है, यह सभी को ध्यान रखना चाहिए। दण्डवत् प्रणाम करते समय शरीर पृथ्वी के समानान्तर हो एवं दोनों हाथ शरीर के आगे बाहर की दिशा में हों।

ग. अर्चाविग्रहों पर ध्यान करना–

मंदिर में अर्चाविग्रह अपने भक्तों को दर्शन देने के लिए आसीन रहते हैं। वे हमारे सम्प्रदाय के इष्टदेव हैं। इसलिए हमें सर्वप्रथम अत्यन्त आदरपूर्वक उनका दर्शन करना चाहिए।

दर्शन लेने के लिए विचार करने योग्य हेतु कुछ बातें

भगवान् के समक्ष एक ओर से दर्शन करें जिससे सामने बैठे भक्तों को भगवान् के दर्शन में कोई बाधा न हो।

–विग्रहों को दण्डवत् करने के पश्चात् अत्यन्त भक्तिभाव से उनका दर्शन करना चाहिए एवं उनसे कृपा की याचना करनी चाहिए।

–किसी को भी प्रत्यक्ष विग्रहों के मुखकमल को नहीं देखना चाहिए। भगवान् का दर्शन कैसे किया जाये इसकी प्रामाणिक विधि का वर्णन श्रीमद्भागवतम् (२.२.१३) में वर्णित है।

''अर्चाविग्रह पर मनन (ध्यान) करने की प्रक्रिया भगवान् के चरणकमलों से आरम्भ की जाये और उसकी प्रगति धीरे-धीरे सुहास्य मुखकमल तक हो। चरणकमल, घुटने के नीचे एवं ऊपर के अङ्ग, जाङ्घ और इस प्रकार एक के बाद एक शरीर के अंगों पर ध्यान केंद्रित करें। भगवान् के शरीर के अङ्गों के विभिन्न भागों पर क्रमशः मन जितना अधिक स्थिर होता है उतना ही अधिक हमारे मन एवं बुद्धि का शुद्धिकरण होता है।

–श्रील प्रभुपाद तात्पर्य में कहते हैं कि इस प्रकार विग्रहों पर मनन एवं ध्यान करना हमें अपने इंद्रियतृप्ति से अनासक्त होने में मदद करता है।

दर्शन का आरम्भ अपने बाएँ स्थित विग्रहों से करना चाहिए। आगे क्रमशः दायीं ओर के विग्रहों का दर्शन करें। उदाहरण स्वरूप यदि आप श्री श्रीराधागोपीनाथ मंदिर में हैं तो सर्वप्रथम दर्शन गुरु परम्परा का होना चाहिए तत्पश्चात् श्री नित्यानन्द प्रभु, श्रीचैतन्य महाप्रभु, श्रीमती राधारानी, श्रीगोपीनाथ जी एवं अंत में श्री गोपालजी का दर्शन करें। (पुष्प अर्पण करते समय भी दर्शन का यही क्रम रखें।)

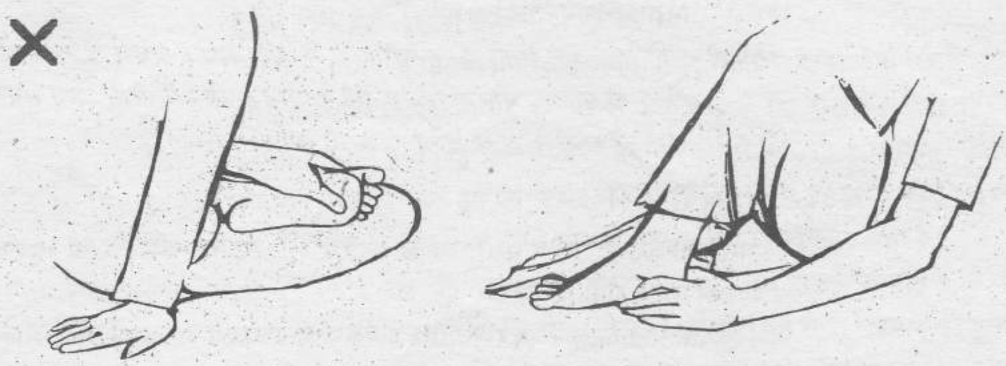

घ. मंदिर में बैठने की विधि

मंदिर में बैठने के सम्बन्ध में अनेक नियम हैं–

–मंदिर में बैठते समय अर्चाविग्रहों के समक्ष पैर खुले न हों अथवा अपने पैरों की अंगुलियों का निर्देश अर्चाविग्रह, गुरु महाराज एवं तुलसी देवी की ओर न हो। यदि संभव हो तो पैर एवं एड़ियाँ ढकी होनी चाहिए।

यदि संभव हो तो श्रीविग्रह, व्यासासन, श्रील प्रभुपाद और श्रीमती तुलसीदेवी की ओर पीठ करके न बैठें। (कभी-कभी मंदिर की संरचना के कारण यह संभव नहीं होता है।)

–विग्रहों के समक्ष पैर फैलाकर न बैठें।

–विग्रहों के समक्ष ऐड़ी, कोहनी अथवा पैरों के तलवों को पकड़कर न बैठें।

–अर्चाविग्रहों के समक्ष झपकी न लें और न ही सोयें।

च. बोलना या बातें करना:

अर्चाविग्रहों के समक्ष कोई भी.....

१. जोर से न बोले,
२. झगड़ा न करे,
३. किसी की भी निंदा, अवेहलना न करें अथवा क्रोधित न हों,
४. दूसरों से बोलते समय संतप्त होकर अथवा किसी के मन को दुःख हो, इस प्रकार न बोलें,
५. दूसरों की स्तुति न करें,
६. देवताओं की निंदा न करें,

७. मजाक न करें अथवा व्यर्थ की बातें न करें,

८. असत्य वचन न बोलें।

टिप्पणी–अतिथि अथवा भक्तों की कृष्णभावना में वृद्धि अथवा प्रचार में मदद हो रही हो तो मंदिर में बोलना वर्जित नहीं है परन्तु इसके अतिरिक्त अन्य सभी प्रकार की चर्चा मंदिर के बाहर ही करनी चाहिए।

छ. वस्त्र एवं वेशभूषा

– भक्तों की वेशभूषा सदैव सादी, स्वच्छ एवं दूसरों को भगवान् श्रीकृष्ण का स्मरण दिलाने वाली होनी चाहिए।

– विशेषतः प्रातःकालीन एवं रविवारीय कार्यक्रम के समय एवं उत्सवों में मंदिर आने वाले भक्तों को निम्नलिखित वस्त्र धारण करने चाहिए–

-पुरुष धोती एवं कुर्ता।

-स्त्रियाँ साड़ी एवं पुरुषों की उपस्थिति में सदा सिर ढककर रखें।

अन्य किसी भी प्रकार के वस्त्र अपरिहार्य (मजबूरी) अवस्था में अथवा प्रचार में अत्यावश्यक होने पर ही पहनें।

– स्त्री एवं पुरुष दोनों की ही वेशभूषा सादी एवं स्वच्छ, शुद्ध स्वरूप की हो। आधुनिक फैशन के अथवा बहुमूल्य वस्त्र न पहनें। आपके वस्त्र ठीक रीति अनुसार एवं सभ्य होने चाहिए।

सुगंधित तेल, इत्र, इत्र के फव्वारे (सेंट) एवं अन्य श्रृङ्गार की अनावश्यक वस्तुओं का प्रयोग न करें। मंदिर में रहें अथवा मंदिर के बाहर, वैष्णवों के लिए सादा रहना अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

– सभी कार्यक्रमों के समय विशेषतः मंदिर के प्रातःकालीन एवं अन्य कार्यक्रमों के समय भी स्वच्छ कपड़े पहनें। पिछले दिन के पहने हुए वस्त्र न पहनें।

– भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु कहते हैं कि ''वैष्णव का अर्थ है, ऐसा व्यक्ति जिसे देखने मात्र से भगवान् श्रीकृष्ण का स्मरण हो जाये।'' इसलिए एक वैष्णव की पहचान करवाने वाली निम्नलिखित बातों के प्रति भक्तों को अत्यन्त जागरूक होना चाहिए।

तिलक :

तिलक लगाने की विधि

श्रील प्रभुपाद श्रीमद्भागवत (४.१२.२८) के तात्पर्य में तिलक के सम्बन्ध में लिखते हैं–

''कलियुग में सोना या आभूषण प्राप्त करना कठिन है किन्तु शरीर शुद्ध करने के लिए उस पर बारह स्थानों पर लगाये जाने वाले तिलकों की सज्जा पर्याप्त है।''

स्नान करके स्वच्छ वस्त्र पहनने के पश्चात् एक स्वच्छ आसन (यदि सम्भव हो तो कुशा घास की चटाई) पर बैठकर शरीर के बारह स्थानों पर उर्ध्वपुण्ड्र अथवा विष्णु

तिलक लगायें। स्नानघर में तिलक लगाना वर्जित है। शरीर पर तिलक लगाने का अर्थ है उसे विभिन्न प्रकार की सेवा में प्रयोग करना।

उर्ध्वपुण्ड्र तिलक में मस्तक अथवा अन्य भागों पर खड़ी दोनों रेखायें शरणागति का प्रतीक हैं। पद्मपुराण एवं यजुर्वेद में कहा गया है कि उर्ध्वपुण्ड्र चिह्न भगवान् के चरणकमल हैं। उर्ध्वपुण्ड्र तिलक अपने मनमाने ढंग से न लगाकर भगवान् श्रीविष्णु के नाम का उच्चारण करते हुए मन से भगवान् का उस स्थान पर आह्वाहन करते हुए लगायें। शरीर पर तिलक लगाने से हमारी आध्यात्मिक शक्ति का विकास होता है।

यदि भक्त भगवान् के नाम का स्मरण करते हुए तिलक लगाता है तो भगवान् स्वयं शरीर के उस स्थान पर निवास करते हैं। इस प्रकार वह शरीर भगवान् का शुद्ध मंदिर बन जाता है। भक्त अपना शरीर शुद्ध करके उसे भगवान् की सेवा में अर्पित करता है।

ऐसा कहा जाता है कि तिलक लगाते समय यदि भक्त दर्पण अथवा पानी में अपना प्रतिबिम्ब ध्यानपूर्वक देखता है तो वह भगवान् के धाम जाता है।

हरिभक्तिविलास में कहा गया है कि यदि तिलक अपने आकार में सुव्यवस्थित न हों, रंग अथवा भौतिक दृष्टि से भक्त के संम्प्रदाय के अनुसार न भी हो तो भी उसमें फिर भी अन्य विशेषतायें रहती हैं।

अधिक जानकारी हेतु कृपया परिशिष्ट १ देखें। पृष्ठ क्र.६२

फिर भी इस बात का ध्यान रखें कि तिलक टेढ़ा, मस्तक के मध्य भाग के अन्यत्र अथवा गंदा न हो।

श्रील प्रभुपाद ने न्यूयॉर्क के भक्तों को निर्देश देते हुए कहा, "अपने हाथ में गोपीचंदन घिसते समय नीचे न गिरायें, उसे व्यर्थ न करें, क्योंकि गोपीचंदन अत्यन्त मूल्यवान है।" यदि वह नीचे गिर जाये तो तुरन्त उस स्थान को साफ कर दें। बायें हाथ में तिलक बनाते हुए एवं मस्तक पर लगाते समय योग्य नामोच्चारण करें।

स्नान करने के पश्चात् प्रत्येक व्यक्ति को अपना शरीर बारह स्थानों पर तिलक लगाकर सुशोभित करना चाहिए।

(टिप्पणी)–जो व्यक्ति हरे कृष्ण महामंत्र का नियमित जप न करता हो एवं नियमों का पालन न करता हो उसे कम से कम मंदिर परिसर के बाहर तिलक नहीं लगाना चाहिए।

केश (बाल):

पुरुष:- ब्रह्मचारी एवं संन्यासियों को सप्ताह में एक बार मुण्डन करना चाहिए एवं सुव्यवस्थित शिखा रखनी चाहिए। स्वयं के व्यवसाय के अनुसार गृहस्थों को भी छोटे बाल एवं शिखा (संभव हो तो) रखनी चाहिए।

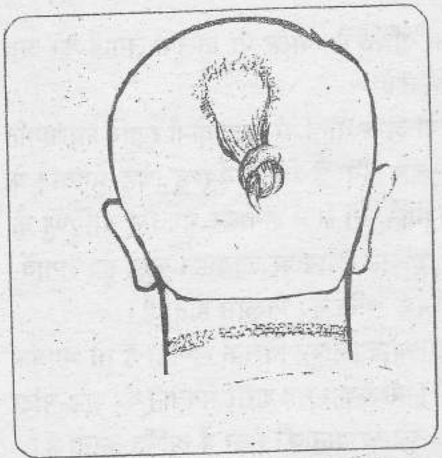

एक समय हवाई में श्रील प्रभुपाद ने (६ मई १९७२) भक्तों से कहा– "गौड़ीय वैष्णवों की शिखा १.५ इंच से बड़ी नहीं होनी चाहिए। बड़ी शिखा किसी अन्य सम्प्रदाय का सूचक है और शिखा को गाँठ लगानी चाहिए।"

शिखा

शिखा के सम्बन्ध में कोई नियम नहीं है। किन्तु गौड़ीय वैष्णव शिखा को बछड़े के खुर के आकार के समान (लगभग १.५ इंच) गोल रखते हैं।

सोते समय, अंतिम क्रिया में जाते समय या शौचक्रिया जाते समय शिखा को खोल देना चाहिए। बिना गाँठ की शिखा कुटुंब में हुई किसी की मृत्यु को दर्शाती है। इसलिए इसे अशुभ माना जाता है। ऐसा कहा जाता है कि यदि कोई शिखा को खोलकर रखता है तो वह दुर्बल हो जाता है।

स्नान के पश्चात् शिखा बाँधते समय 'हरे कृष्ण' महामंत्र का उच्चारण करें और ब्राह्मण दीक्षित भक्त मन में ब्रह्म गायत्री की पहली पंक्तियों का उच्चारण कर सकते हैं और शिखा को स्त्रियों के समान चोटी न गूँथें।

स्त्रियाँ:-स्त्रियाँ लम्बें बाल रखें। आधुनिक रीति अनुसार बाल न रखें और या तो उन्हें पीछे बाँधें या सुन्दर चोटी बनायें।

कण्ठी माला

गले में तुलसीमाला भगवान् के प्रति शरणागति का सूचक है।

अपराधी व्यक्ति यदि तुलसी माला ग्रहण करता है तो भी वह वैष्णव न होकर केवल वैष्णवों की नकल करता है और गम्भीर रूप से भगवान् की शरण में जाने का प्रयत्न नहीं करता।

कुछ भक्त पूजा, जप या कोई शुभ कार्य करते समय अन्य प्रकार की मंगलमय मालायें, जैसे, तुलसी की बनाई विशेष माला, कमल के बीजों की माला, जगन्नाथ रथ की रस्सियों के टुकड़ों से बनाई माला, अथवा पवित्र रेशम से बनाई माला गले में पहनते हैं। किन्तु स्नान करते समय, शवयात्रा में जाते समय या शौच इत्यादि के समय उन्हें निकाल देना चाहिए।

नियमित रूप से कंठिमाला धारण करने से बुरे सपने, दुर्घटना, शस्त्र द्वारा आक्रमण तथा यमदूतों से रक्षा होती है। कंठिमाला देखकर यमदूत उसी प्रकार भाग जाते हैं जिस प्रकार तूफान की भयंकर आँधी के पश्चात् वृक्ष के पत्ते इधर-उधर बिखर जाते हैं।

सभी दीक्षित भक्तों के लिए दुहरी अथवा तिहरी कण्ठी माला धारण करना अति आवश्यक है। कण्ठी माला गले में इस तरह लपेटनी चाहिए जो स्वाभाविक रूप से ही किसी को नजर आ जाये।

– जो भक्त दीक्षित नहीं हैं, परंतु कुछ दिनों से सभी नियमों का पालन कर रहे हैं एवं दीक्षा लेने के इच्छुक हैं, उन्हें भी कण्ठी माला पहननी चाहिए।

– जो भक्त मूल वैधानिक नियम, विशेष रूप से हरिनाम का जप एवं चार नियमों का पालन नहीं कर रहे हैं उन्हें कण्ठी माला नहीं पहननी चाहिए। स्पष्ट शब्दों में कहें तो कण्ठी माला धारण करने के पश्चात् लहसुन एवं प्याज का भी सेवन नहीं करना चाहिए।

– इसी प्रकार सभी लोगों को नये भक्तों का भी मार्गदर्शन करना चाहिए।

दाढ़ी एवं मूछें

जो भक्त दीक्षित हैं अथवा दीक्षा लेने की तैयारी में हैं उन्हें दाढ़ी एवं मूछें नहीं रखनी चाहिए। (कुछ विशेष वैष्णव लगभग पंद्रह दिन में अथवा पूर्णिमा को मुण्डन करते हैं एवं चातुर्मास के समय बिल्कुल ही मुण्डन नहीं करते हैं। प्रचार की दृष्टि में, विशेष तौर पर अन्य उचित कारणों के अपवाद के अतिरिक्त नियमित रूप से मुण्डन करना एक आदर्श है।)

– भक्तों को अधिक कीमती एवं चमकीले आभूषणों, महंगी एवं मनोहर घड़ियों इत्यादि का प्रयोग नहीं करना चाहिए। आवश्यक होने पर स्त्रियाँ सावधानीपूर्वक स्वाभाविक आभूषणों का वरण करें एवं पुरुष (यदि संभव हो तो) सोने की अंगूठी, जंजीर एवं अन्य आभूषणों का प्रयोग न करें।

– चमड़े की वस्तुओं का निर्माण प्राणियों की हत्या एवं हिंसा के परिणाम स्वरूप होता है, यह जानते हुए जितना संभव हो सके उतना चमड़े की वस्तुओं का प्रयोग न करें। जब तक सेवा के कार्य में अत्यन्त आवश्यक न हो तब तक चमड़े की चप्पल एवं जूते का प्रयोग न करें। इसी प्रकार चमड़े से बने थैलों, पर्स, कमरपट्टी (बेल्ट) अथवा घड़ी के पट्टों का प्रयोग भी न करें।

ज. स्वच्छता एवं स्वास्थ्य-तत्त्व

– जैसा कि पहले ही बताया गया है, मंदिर में स्वच्छ कपड़े ही पहनें।

- कोई भी पदार्थ खाने के पश्चात्, हाथ एवं मुँह धोकर ही मंदिर में प्रवेश करें।

– मंदिर में प्रवेश करते समय हाथ एवं पैर स्वच्छ धुले हुए हों।

– शौचक्रिया के पश्चात् स्नान करके ही मंदिर में प्रवेश करें।

- श्मशान भूमि से आने के पश्चात् अथवा मृत शरीर का स्पर्श करने के पश्चात् योग्य प्रकार से स्नान करने के उपरांत ही मंदिर में प्रवेश करें।
- मंदिर में किसी को भी डकार नहीं लेनी चाहिए अथवा अपान वायु (अशुद्ध वायु) प्रसार नहीं करनी चाहिए।
- मंदिर में रहते हुए मुख में, कान में अथवा नाक में अंगुली न डालें। यदि अत्यन्त आवश्यक हुआ तो तुरन्त हाथ धो लें। (मंदिर के बाहर भी इस नियम का पालन करें) अर्चाविग्रहों की सेवा करने वाले भक्तों को उपरोक्त नियमों के पालन में विशेष ध्यान रखना चाहिए।
- मासिक धर्म के समय मातायें (ऋतु स्नान से पूर्व) मंदिर में आ सकती हैं परन्तु आरती, श्रृङ्गार सेवा, हार बनाना अथवा मंदिर एवं मंदिर के रसोई घर का कार्य एवं विग्रहों के वस्त्रों की सिलाई इत्यादि विग्रहों से प्रत्यक्ष संबधित सेवा न करें और न ही इन वस्तुओं का स्पर्श करें।
- ऐसे समय मासिक धर्म वाली स्त्रियाँ भगवान् की सेवा करने वाले किसी भी व्यक्ति के संपर्क में न रहें।
- ऐसी माताजी तुलसी पूजा में रह सकती हैं परन्तु तुलसीदेवी को जल अर्पण नहीं कर सकती।
- किसी भी स्थान, काल, परिस्थिति में जपमाला पर नाम-जप रोकना नहीं है। भगवान् के पवित्र नाम का जप करने के लिए कोई भी बन्धन नहीं है।
- यदि संभव हो तो घर में भी माताओं को उपरोक्त नियमों का पालन करना चाहिए। लेकिन कभी-कभी अपवाद स्वरूप रसोई करने के लिए अन्य कोई व्यक्ति न हो तब उपरोक्त नियमों का पालन संभव नहीं होता है। ऐसे समय में उनको अपनी गृहस्थी के अन्य कर्तव्यों का पालन करना चाहिए तथा विग्रहों (घर पर स्थित) की उचित देखभाल हो रही है अथवा नहीं, इसका ध्यान रखना चाहिए। ऐसे समय में यदि संभव हो तो परिवार के अन्य सदस्यों को उचित सहायता अवश्य करनी चाहिए।

घ. सामान्य व्यवहार

–हम भक्त हैं और सदैव गुरू तथा श्रीकृष्ण का प्रतिनिधित्व करते हैं, यह बात सभी भक्तों को सदा ध्यान में रखनी चाहिए। मंदिर में रहें या घर पर, कचहरी में काम कर रहे हों या मार्ग पर हों, प्रत्येक को अपने सद्व्यवहार द्वारा गुरु और भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति प्रशंसा भरे उद्गार प्राप्त करना चाहिए इसी प्रकार अपने दुर्व्यवहार के कारण अपने गुरु एवं श्रीकृष्ण का अपमान हो ऐसा व्यवहार कभी नहीं करना चाहिए।

–यदि किसी का अनादर अथवा अपमान किया गया हो तब भी ऐसे समय में स्वयं की उदारता दिखाते हुए अपना स्तर जरा भी कम न होने देते हुए व्यवहार अच्छा रखना

चाहिए।

– भक्तों को सदा इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि कोई उन्हें फँसाये अथवा ठगे नहीं। साथ ही साथ भक्त को किसी भी झगड़े या व्यर्थ के वाद-विवाद में नहीं पड़ना चाहिए।

–विपरीत लिङ्ग के व्यक्ति से व्यवहार करते समय विशेष सावधानी बरतनी चाहिए।

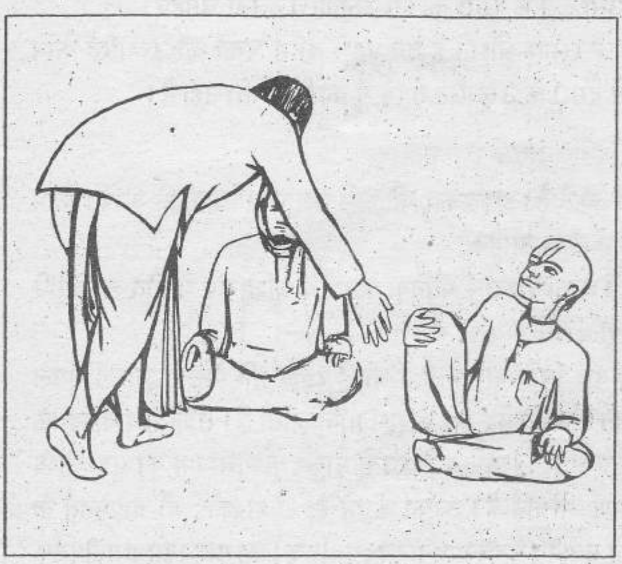

– श्रील रूप गोस्वामी कहते हैं कि, "भक्तों को अपने सामान्य व्यवहार के प्रति कभी भी असावधानी नहीं बरतनी चाहिए। दूसरे शब्दों में कहा जाये तो, भक्तों को अपनी मूलभूत औपचारिकता, सभ्यता एवं मान-अपमान के व्यवहार को सांसारिक समझकर (स्वयं को उनके परे पहुँचा हुआ दिव्य व्यक्तित्व समझकर) उसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

– किसी से भी स्वयं के पैर से स्पर्श हो जाना अपराध माना जाता है। मंदिर में बैठे हुए लोगों के बीच से मार्ग (रास्ता) निकालना हो तो थोड़ा-सा झुककर हाथ आगे करके "हमें मार्ग चाहिए" ऐसा संकेत करना चाहिए, जिससे बैठे हुए लोग एक तरह हटकर रास्ता दे दें। यदि अनजाने में अपने पैर का स्पर्श किसी को हो गया तो तुरंत धीरे से उसके शरीर को दाहिने हाथ से स्पर्श करके हाथ अपने मस्तक पर लगाना चाहिए, ऐसा करने से अपराध नष्ट हो जाता है।

– शास्त्रों के अनुसार दो ब्राह्मणों या भक्तों के मध्य से जाते समय यदि हाथ दिखाकर हम मार्ग नहीं माँगते तो हमारा सम्पूर्ण ज्ञान नष्ट हो जाता है।

ट. प्रवचन वर्ग

प्रवचन के दौरान अत्यन्त शान्त एवं एकाग्रचित्त होना आवश्यक है। सोने वाले (आलसी) अथवा बातुनी भक्त प्रवचनकार को निरुत्साही बनाते हैं तथा श्रोताओं का ध्यान विचलित करते हैं। इस प्रकार का व्यवहार गुरु एवं परंपरा को कलंकित करता है।

– यदि किसी को अत्यन्त नींद आ रही हो तो उसे एक तरफ दीवार के किंनारे जाकर खड़े हो जाना चाहिए

– इससे पहले मंदिर में बैठने के संदर्भ में सुझाये गये नियमों का अक्षरशः पालन करना चाहिए।

– प्रवचन के दौरान मंदिर में अथवा जिस स्थान पर प्रवचन हो रहा है उस कमरे के

अंदर-बाहर घूमना वर्जित है, क्योंकि इससे प्रवचन में बाधा उत्पन्न हो सकती है।

- माता-पिताओं को अपने बच्चों का ख्याल रखना चाहिए। यदि बच्चे शोर मचा रहे हों तो उन्हें मंदिर के बाहर ले जायें।
- संबंधित एवं प्रसंगोचित प्रश्न पूर्ण नम्रतापूर्वक पूछे जायें।
- श्रीमद्भागवतम् अथवा भगवद्गीता प्रवचन के समय, प्रवचनकर्ता जिस लय में श्लोक गा रहे हों उसी लय में दूसरों को भी अनुकरण करना चाहिए।
- उसके बाद जब भक्त श्लोक बोलते हैं तब पहले वरिष्ठ भक्तों को उच्चारित करने दिया जाये; बाद में दूसरों के उच्चारित करने में कोई आपत्ति नहीं है।

ठ. आरती

आरती को *निरञ्जन* भी कहते हैं। इस प्रकार की शुभ वस्तुएँ भगवान् को अर्पित करने से अशुभ प्रभाव नष्ट हो जाता है।

हम जो भी अर्पित करते हैं वे सभी पदार्थ भौतिक पदार्थ के शुद्ध रूप में होते हैं तथा वे इन्द्रियविषयों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

इस प्रकार आरती की सम्पूर्ण विधि शुभकारी होती है। दिन की पहली आरती मंगल आरती में सम्मिलित होना विशेष रूप से शुभ माना जाता है। सत्रहवीं शताब्दी के मध्य में अवतीर्ण हुए श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कृष्णभावना की गुरु-शिष्य परम्परा के महत्वपूर्ण आचार्य हैं। उनका कथन है, "जो कोई भी ब्रह्ममूहर्त के समय श्री गुरु के प्रति समर्पित सुन्दर प्रार्थनाओं (गुर्वाष्टक) का गायन सावधानीपूर्वक उच्चस्वर में गान करता है उसे मृत्यु के समय वृन्दावननाथ भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों के प्रति प्रत्यक्ष सेवा का अवसर प्राप्त होता है।"

श्रील प्रभुपाद लिखते हैं–

"सूर्योदय के पूर्व लगभग डेढ़ घण्टा पूर्व मंदिर में मंगल आरती होना आवश्यक है।"
(श्रीचैतन्य चरितामृत मध्य २४.३३४ तात्पर्य)

श्रील प्रभुपाद भक्तिरसामृत सिन्धु में आरती के दर्शन करने की विधि के लाभ पर बल देते हैं।

स्कंद पुराण में आरती अथवा पूजा देखने से होने वाले लाभों का वर्णन इस प्रकार है– 'यदि कोई भगवान् की आरती करते समय उनके मुखकमल को निहारता है तो वह लाखों वर्षों के संचित पापकर्मों से मुक्त हो जाता है। इतना ही नहीं अपितु वह ब्रह्महत्या जैसे पापों से भी मुक्त हो जाता है। (भक्तिरसामृत सिन्धु, अध्याय ९)

ङ. महाप्रसाद अथवा निर्माल्य स्वीकार करना

निर्माल्य अर्थात् पूजा के समय भगवान् को अर्पित की गई वस्तुएँ, जैसे हार, फूल, चंदन, चरणामृत, घी का दीपक, तुलसीपत्र इत्यादि। पूजा होने के पश्चात् भक्तों द्वारा इन वस्तुओं को स्वीकार करके आँखों एवं मस्तक पर स्पर्श करते हुए तथा उनकी स्तुति करते हुए 'जय महाप्रसाद' का उद्घोष करना चाहिए।

१) फूल अथवा हार

क) निर्माल्य पर पैर रखकर अथवा उसे गंदे स्थान पर फेंककर किसी को भी उसका अपमान नहीं करना चाहिए।

ख) निर्माल्य का आदर करने के पश्चात् उन्हें एकत्रित करके नदी, तालाब या समुद्र में प्रवाहित कर दें।

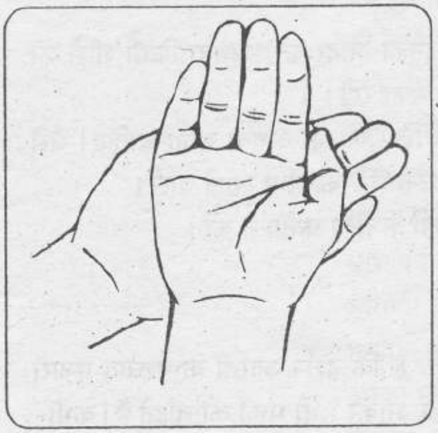

ग) महाप्रसाद रूपी हार का मस्तक से स्पर्श करके, गले में पहनकर अथवा सुगंध लेकर भक्त आदर करते हैं।

२) चरणामृत

क) चरणामृत (भगवान् के अभिषेक के पश्चात् प्राप्त सुगन्धित जल) का आदरपूर्वक सेवन करना चाहिए।

ख) चरणामृत का सेवन इतना प्रबल है कि जीव हत्या के समान लाखों पाप इससे नष्ट हो जाते हैं, परन्तु किसी ने यदि इसकी एक बूँद भी भूमि पर गिराई तो उसे ८ लाख अधिक बार पाप का परिणाम भोगना पड़ता है।" (हरिभक्तिविलास)

श्रीराधाकृष्ण-पादोदकं प्रेम भक्तिदमुदा।
भक्तिभावेन वै पित्वा शिरसा धारयाम्यहम्॥

"यह जल श्री श्रीराधा-कृष्ण के चरणकमलों से आया है अतः यह हमें प्रेमभक्ति प्रदान करे। इस प्रकार आनन्दित तथा भक्तिमय होकर इस चरणामृत का सेवन करके मैं इसे अपने मस्तक पर धारण करता हूँ।"

ग) पुजारी चरणामृत वितरित करते समय तथा भक्त चरणामृत ग्रहण करते एवं मस्तक पर लगाते समय उपरोक्त मंत्र का उच्चारण करें।

घ) चरणामृत, फूल, हार तथा तुलसीपत्र नीचे न गिरे इसलिए अपनी बाईं हथेली को दाहिनी हथेली के नीचे रखें।

ङ) भगवान् के महाप्रसाद का आदरपूर्वक सेवन करें, परन्तु विग्रहों के समाने उसे ग्रहण करना वर्जित है। (हाथों की हथेलियों में समा जाने योग्य महाप्रसाद अपवाद है)

३. घी का दीपक

१) कुछ पारम्पारिक मंदिरों में दीपक को सर्वप्रथम पीछे स्थित गरुड़जी के पास ले जाया जाता है।

२) इस्कॉन मंदिरों में दीपक को सर्वप्रथम श्रील प्रभुपाद के समक्ष ले जाया जाता है, जो अंतर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ के संस्थापकाचार्य एवं उपस्थित समस्त वैष्णवों में श्रेष्ठ हैं। (मासिक धर्म के दौरान मातायें दीपक का स्पर्श न करें।)

३) अर्पित दीपक को आदर देने के लिए हाथ से दीपक का स्पर्श मस्तक पर करते हुए 'जय महाप्रसाद' का उच्चारण करें।

४. भगवान् के वस्त्र

१) भगवान् के वस्त्र भी निर्माल्य ही हैं, उनका प्रसाद के रूप में आदरपूर्वक वितरण किया जा सकता है।

२) अन्य पूजनीय वस्तुओं के मध्य रखकर इनका आदर करें, अथवा किसी शीशे की मंजूषा या दीवार पर चित्र की भाँति टाँगकर रखें।

३) उन वस्त्रों को केवल भक्तिमय कार्यों के लिए काटना अथवा सीना चाहिए। जैसे जपमाला की थैली, छोटे बच्चों के नाटक जैसे कार्यों में लगने वाले।

४) भगवान् के वस्त्रों को शरीर के निचले भागों के लिए प्रयोग न करें।

५. महाप्रसाद

१) भारत के अधिकांश मंदिरों में देखा जाता है कि दर्शन आरती के पश्चात् पुजारी थोड़ा-सा प्रसाद गर्भगृह से अथवा बाहर आकर सभी भक्तों को बाँटते हैं। कभी-कभी प्रचार की दृष्टि से नये लोगों को प्रसाद बाँटा जाता है। भक्त इस उच्छिष्ट को तुरन्त स्वीकार करते हैं। यदि सम्भव हो तो प्रसाद को भगवान् के समक्ष न खाकर मंदिर से बाहर आकर खायें।

२) यथासम्भव सूखे प्रसाद का वितरण करने का प्रयास करें, क्योंकि गीले (रसयुक्त) प्रसाद की भूमि पर गिरने की सम्भावना रहती है।

२. अन्य नियम

क. पवित्र वस्तुओं का प्रयोग

१) आध्यात्मिक पुस्तकें, जपमाला, करताल इत्यादि वस्तु भूमि पर अथवा अस्वच्छ स्थानों पर न रखें। पूजनीय वस्तुओं के समान ही इन वस्तुओं का भी आदर करें।

२) किसी भी पवित्र वस्तु को पैर से स्पर्श न करें। जो कार्य हाथों से हो सकते हैं उनके लिए व्यर्थ में पैरों का प्रयोग न करें।

३) यदि कोई पवित्र वस्तु भूमि पर पड़ी हो तो उसे तुरंत उठाकर मस्तक से स्पर्श करायें।

४) ग्रंथ, भक्त, प्रसाद, भगवान् को अर्पित किये गये पुष्प तथा अन्य पवित्र वस्तुओं को लांघें नहीं।

५) पवित्र वस्तु एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को देते समय उन्हें फेंकना अथवा सरकाना नहीं चाहिए। ऐसे वस्तुओं का लेन-देन अत्यन्त सावधानी पूर्वक करें।

६) जपमाला, ग्रंथ एवं गोपीचंदन आदि पवित्र वस्तु स्नानघर में न ले जायें।

७) गुरु व भगवान् श्रीकृष्ण की प्रतिमा को अत्यन्त सावधानी पूर्वक एवं आदर के साथ प्रयोग में लायें।

८) हरिनाम चादर के बारे में विशेष रूप से जानकारी देना आवश्यक है। इस वस्त्र पर भगवान् का पवित्र नाम छापे जाने के कारण वह भी पवित्र वस्तु बन जाती है, अतः उसका भूमि पर स्पर्श न होने दें। हरिनाम चादर ओढ़ने वाले भक्तों को उसे उतारने के बाद योग्य स्थान पर ही रखना चाहिए। उसी प्रकार भगवान् के चित्र नाम इत्यादि छापे गये कुर्ते (टी-शर्ट) की देखभाल भी उपरोक्त पद्धति से ही करें।

९) दण्डवत् करते समय इस बात की सावधानी बरतें कि हाथ में अथवा गले में लटकी जपमाला का भूमि पर स्पर्श न हो। दण्डवत् करने के पूर्व उसे निकालकर योग्य स्थान पर रखें।

१०) वस्त्र, आभूषण, बर्तन इत्यादि अर्चाविग्रह से सम्बन्धित वस्तुओं के उपयोग में भी अत्यन्त सावधानी रखें। उदाहरणार्थ, कपड़े एवं बर्तन योग्य स्थानों पर रखें। कपड़ों को अच्छी तरह से लपेट कर रखें।

११) अस्वच्छ स्थल अथवा वस्तुओं पर हाथ का स्पर्श हो जाने के पश्चात् विग्रहों की वस्तुओं को स्पर्श करने से पूर्व हाथ धो लें।

१२) भगवान् श्रीकृष्ण और उनसे सम्बन्धित वस्तु इनमें किसी भी प्रकार की भिन्नता नहीं है। उनका अनादर करना भगवान् का अनादर करना है। इससे हमारे हृदय में शुद्ध भक्ति का उदय होना असंभव है। क्योंकि इनका उपयोग भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा में होता है ये वस्तुएँ सामान्य न होकर पूजनीय हैं। यह सदैव स्मरण रखना आवश्यक है।

अतः उपर्युक्त वर्णित सभी नियम अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

ख. व्यक्तिगत आदतें

१. जो व्यक्ति आध्यात्मिक जीवन के प्रति गंभीर हैं उन्हें प्रातः शीघ्र, यदि संभव हो ता ब्रह्ममूहूर्त में (सूर्योदय से डेढ़ घण्टे पहले) उठना चाहिए।

२. उसके पश्चात् ठण्डे पानी से स्नान करके स्वच्छ वस्त्र पहनने चाहिए तथा दिन के कार्यों का शुभारंभ करना चाहिए।

३. निम्नलिखित सभी परिस्थितियों में स्नान करना आवश्यक है–
–प्रातः उठने के पश्चात्,

> श्रीमद्भागवतम् (३.२० तात्पर्य) में कहा गया है, ''प्रातःकाल सूर्योदय से डेढ़ घण्टें पहले का समय ब्रह्ममूहूर्त कहा गया है। इस काल में आध्यात्मिक कार्य किये जाते हैं। ब्रह्ममूहूर्त में किये गये आध्यात्मिक कार्यो का प्रभाव दिन के किसी भी समय में की गई आध्यात्मिक क्रिया के प्रभाव से अधिक रहता है।''

–एक घण्टे से अधिक समय तक वामकुक्षी (बाएँ करवट लेटने) अथवा नींद लेने के पश्चात्,
–शौचक्रिया करने के पश्चात्,
–अधिक गर्मी या पसीना आने पर,
–किसी भी कारण से दूषित होने पर।

४. व्यक्तिगत स्वच्छता एवं स्वास्थ्य तत्त्व (आरोग्य तत्त्व) का पालन करें, नाखून छोटे-छोटे तथा स्वच्छ हों। काटे गये नाखूनों के टुकड़ें कूड़ेदान में डालें। श्रील रूप गोस्वामी तो दाँतों की स्वच्छता के विषय में भी विस्तारपूर्वक लिखते हैं।

५. मूत्र विसर्जन करने के पश्चात् इंद्री एवं हाथ-पैर धोने चाहिए, शौच से आने के पश्चात् अच्छी तरह साबुन लगाकर हाथ धोना चाहिए। (ब्राह्मण दीक्षित भक्त को शौच जाने से पूर्व अपने यज्ञोपवित को दायें कान पर लपेटना चाहिए।)

६. प्रसाद ग्रहण करना, जपमाला पर जप करना, कोई भी वस्तु अर्पण करना तथा किसी भी वस्तु का लेन-देन करना इन सभी कार्यों में दाहिने हाथ का प्रयोग करें।

७. प्रतिदिन रात को साधारणतया छः से साढ़े छः घण्टे सोना चाहिए। अधिक नींद अथवा बिल्कुल कम नींद ये दोनों ही कृष्णभावना के लिए अनुकूल नहीं हैं।

८. सोने के लिए भूमि पर अथवा कठोर पृष्ठभाग का प्रयोग करें। संभव हो तो आरामदायक, कोमल एवं मुलायम गद्दों का प्रयोग वर्जित करें।

९. दाहिने करवट में सोना अति उत्तम है। यदि वह संभव न हो तो पीठ के बल सोना चाहिए। पेट के बल सोना निषिद्ध है।

१०. साबुन, दंतमंजन, बिजली, पानी यह सबकुछ भगवान् श्रीकृष्ण की शक्ति है अतः इनका अपव्यय न करें। जहाँ-जहाँ एवं जब-जब आवश्यकता न हो उस समय बिजली व पंखा बंद रखें।
११. भगवान् की संपत्ति का उपयोग कम से कम एवं जिम्मेदारीपूर्वक करें। किसी भी प्रकार का खर्च करते समय स्वयं से प्रश्न करना चाहिए कि क्या यह भगवान् की सेवा को अच्छी प्रकार करने में सहायक है या नहीं।
१२ सदैव स्वच्छ कपड़े पहनें।
१३. चोरी न करें।
१४. अपशब्द न बोलें।
१५. झूठ न बोलें।
१६, दूसरों से ईर्ष्या न करें।
१७. ईर्ष्यालु, पतित, पापी, दुश्मन, व्यभिचारी, अपव्ययी, फँसानेवाला (ठग), झूठा इन व्यक्तियों से संग न करें। उसी प्रकार व्यभिचारी स्त्री/ पुरुष से संग न करें।
१८. अकेले प्रवास न करें।
१९. छींकते समय अथवा जम्हाई लेते समय हाथ से मुख को ढक लें।
२०. जोर से न हँसे।
२१. जोर से आवाज करते हुए अपान वायु (पादना) न छोड़ें।
२२. रात्रि के समय श्मशान, उद्यान एवं व्यभिचारी स्त्री का संग न करें।
२३. पतित व्यक्तियों का आश्रय न लें।
२४. वरिष्ठों की सभा में उनके सामने पैर न फैलायें। दूसरों के सामने अपने पैरों को सदैव ढक कर रखें।
२५. सड़क पर लघुशंका न करें।
२६. भोजन ग्रहण करते समय न थूकें।
२७. स्वयं के बच्चे अथवा शिष्यों के अतिरिक्त किसी को भी सिखाने के लिए गुस्सा न करें।
२८. किसी के सिर पर न मारें और न ही बाल खींचें।
२९. किसी ने अपमान किया हो तो वह स्थान तुरन्त छोड़ दें।
३०. स्वयं की स्तुति न करें।
३१. नग्न स्त्री अथवा पुरुष या उनका चित्र देखना टालें।
३२. नदी या तालाब के पानी में थूके नहीं।
३३. मुख या नाक में हाथ डालने के पश्चात् हाथों को धो लें।
३४. जोर से दरवाजा बंद न करें। यद्यपि यह साधारण दिखाई देने वाली गलतियाँ हैं परन्तु इसका परिणाम सभी को विचलित करने वाला है। ये आलसी एवं गैर जिम्मेदारी के लक्षण हैं।
३५. नैतिक नियमों का पालन करना आध्यात्मिक संस्कृति का एक महत्त्वपूर्ण भाग है।

ग. कीर्तन

१. मंदिर में अथवा अन्य सत्संग के स्थान पर कीर्तन का प्रतिनिधित्व करना एक बड़ा सम्मान है, क्योंकि वह भक्त विग्रहों के समक्ष सभी भक्तवृंदों का प्रतिनिधित्व कर रहा होता है। अतः उपर्युक्त बातों की पूर्ण जानकारी रखते हुए तथा वरिष्ठ भक्तों की आज्ञा होने पर ही किसी भक्त को कीर्तन का प्रतिनिधित्व करना चाहिए।

२. केवल प्रामाणिक भजनों को ही गायें।

३. कीर्तन के अन्त में बोली जाने वाली प्रेमध्वनि प्रार्थना (जय ॐ विष्णुपाद.....) मंदिर में उपस्थित सबसे वरिष्ठ भक्त, जैसे-श्रील प्रभुपाद के शिष्य या संन्यासी, द्वारा उच्चारित की जानी चाहिए।

४. हमारी परंपरा के महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों के आविर्भाव दिन अथवा तिरोभाव दिन जैसे महत्त्वपूर्ण सत्सङ्गों के अलावा अन्य सभी सामान्य सत्संगों के समय प्रामाणिक प्रेमध्वनि प्रार्थना ही बोली जाये। विशेष सत्संगों के समय दिनविशेष के अनुसार अन्य प्रेमध्वनि के साथ ही उस विशेष व्यक्ति का गौरव भी करें।

५. दिन के अलग-अलग समय के अनुसार निश्चित् भजन निश्चित राग में ही गाना चाहिए। उदाहरणार्थ, मंगल आरती (संसार दावानल लीढ़.....तथा महामंत्र) एक विशेष राग में ही गाई जाये।

अधिक जानकारी हेतु कृपया परिशिष्ट २ देखें। पृष्ठ क्र.६४

६. कीर्तन का प्रतिनिधित्व करते समय उन्हें साधारण राग में गाना चाहिए। (जिससे उपस्थित भक्त सरलता से उसे गा सकें)

७. अन्य भक्तों को, प्रमुख गायक के राग में ही भजन को गाना चाहिए। इसलिए प्रमुख गायक के शब्दों की ओर सभी का सूक्ष्म ध्यान होना अत्यावश्यक है।

८. सभी भक्तों को एक ही स्वर में अत्यन्त उत्साहपूर्वक गायन करना चाहिए।

९. मृदंग तथा करतालवादकों को प्रमुख गायक के आसपास रहना चाहिए। प्रमुख गायक की ओर अच्छी तरह ध्यान देते हुए उसके गायन के वेग के अनुसार वाद्ययंत्रों के वेग को कम ज्यादा करके सदैव मेल बैठाते रहें। अतः करताल तथा मृदंगवादकों का अति कुशल होना आवश्यक है।

१०. प्रातःकालीन कार्यक्रमों का सामान्य क्रम निम्नलिखित प्रकार से हो– "संसार दावानल प्रार्थना, पंचतत्त्व मंत्र, हरे कृष्ण महामंत्र, हरि हरये नमः कृष्ण यादवाय नमः" कीर्तन का लगभग आधा भाग, हरे कृष्ण महामंत्र का गायन होना आवश्यक है।

११. प्रातःकालीन कार्यक्रम के समय गाये जाने वाले गुर्वाष्टक, नृसिंह आरती, तुलसी आरती इत्यादि अलग-अलग प्रार्थनाओं की प्रत्येक पंक्ति केवल एक बार ही बोली जाये।

१२. जहाँ एक से अधिक मृदंग अथवा करताल वादक हैं वहाँ वादकों को एक-दूसरे के सुरों का सामंजस्य बैठाना आवश्यक है।

१३. कीर्तन केवल उच्च स्वर में करना ही पूर्णता नहीं है अपितु उसे सुर-ताल तथा सुनने में मधुर होना चाहिए।

घ. नृत्य

१. श्रील रूप गोस्वामी कहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति को विग्रहों के समक्ष नृत्य करना सीखना चाहिए।

२. ये नृत्य आनन्ददायक तथा उत्साही होने चाहिए। परन्तु वे दूसरों को कष्ट पहुँचाने वाले न हों।

३. श्रील प्रभुपाद द्वारा स्वयं के उदाहरण से दिखाये गये पारंपारिक गौड़ीय पद्धति से नृत्य करना एक आदर्श है।

४. इसके अलावा और भी अनेक प्रकार से कीर्तन किया जाता है। जैसे:–

–भक्तों की पंक्ति आमने-सामने कीर्तन करती हुई एक-दूसरे के पास आकर पुनः दूर जाती है।

–विग्रहों के सामने मुख करके एक के पीछे एक इस तरह भक्तों की पंक्ति कीर्तन करती हुई विग्रहों की दिशा में कुछ कदम तथा विग्रहों की विरुद्ध दिशा में कुछ कदम चलती है।

–भक्त गोल-गोल घूमकर कीर्तन करते हैं।

५. इन सभी प्रकारों में पंक्ति तथा अन्य बातें व्यवस्थित (अच्छी तरह) रहें इसका भक्तों को ध्यान रखना चाहिए।

६. अनेक प्रकार से कीर्तन करने हुए भक्तों को साथ देने के लिए आवश्यकतानुसार हाथ उठाना चाहिए अथवा ऊपर नीचे करने के लिए साथ देना चाहिए।

७. यह कीर्तन कोई 'दर्शनीय दृश्य' नहीं है, अतः भक्तों को उसे देखते हुए एक ही जगह पर रुके नहीं रहना चाहिए। सभी को उसमें सहभाग लेना चाहिए। फिर भी जिन्हें कीर्तन में सहभागी होने की इच्छा नहीं है (विशेष रूप से अतिथि, नये भक्त अथवा बीमार भक्त) ऐसे लोगों से आग्रह करने में जबरदस्ती न करें।

८. यदि किसी विशेष प्रकार से नृत्य करने से अन्यों को कष्ट होता हो तो वैसे नृत्य न करें। जैसे–

–दो भक्तों का हाथ पकड़कर वेगपूर्वक गोल घूमना (फुगड़ी),

– पूरा हाथ बाहर निकालकर स्वयं गोल घूमना,

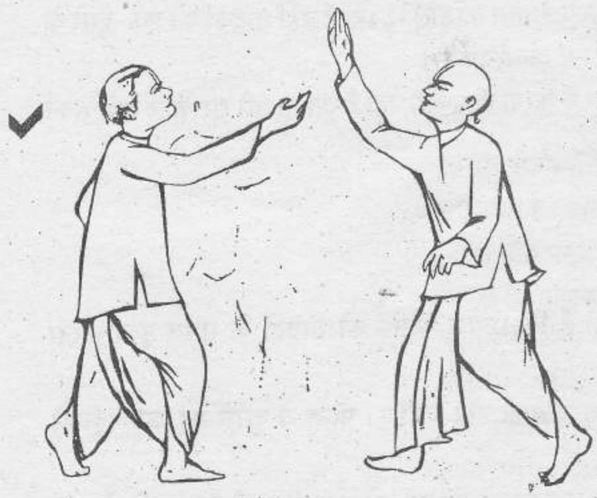

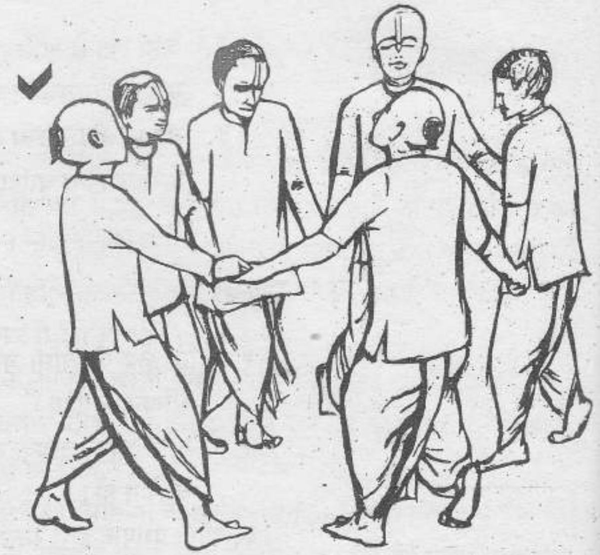

– छोटे बच्चों को तथा बड़ों को भी हवा में ऊपर उठाना अथवा फेंकना,

– गोलाकार कीर्तन करते हुए एक-दूसरे को ढकेलना।

९. स्त्रियों तथा पुरुषों को मंदिर के अलग-अलग भाग में कीर्तन करना चाहिए।

१०. कीर्तन का प्रतिनिधित्व करने वाले की ओर सदा ध्यान दें तथा उसी प्रकार का कीर्तन करें।

११. श्रीचैतन्य महाप्रभु की नृत्य शैली में हाथ उठाकर उत्साहपूर्वक तथा भक्तिभाव से नृत्य करना परिपूर्ण कीर्तन है।

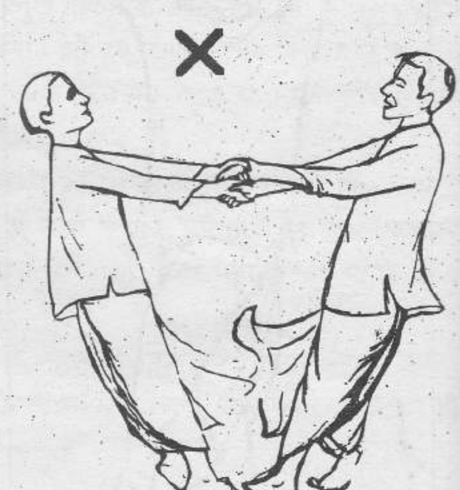

च. बोलना

१. हमारी बोलने की इच्छा अत्यन्त तीव्र होती है तथा मौका पाते ही हम बोलना आरम्भ कर देते हैं, परन्तु यदि हमारा बोलना कृष्णकथा से संबंधित नहीं है तो वह बोलना निरर्थक ही होता है।

२. इस प्रकार निरर्थक बोलना ''प्रजल्प'' अथवा ''प्रमाद'' कहलाता है। इसकी उत्पत्ति अपनी भौतिक इच्छाओं के कारण होती है अतः भक्तों को सदा इससे सावधान रहना चाहिए।

३. सभी भौतिक सांसारिक साहित्य भी हमारी इस बोलने की प्रवृत्ति का व्यवहारिक प्रदर्शन ही है। श्रील प्रभुपाद उपदेशामृत में कहते हैं कि भौतिकवादी लोगों को समाचार पत्र, मासिक पत्र तथा उपन्यासों के ढेर के ढेर पढ़ने में, शब्द पहेली हल करने में तथा अन्य निरर्थक बातें (गप्पें) करने में आनन्द आता है।

इस प्रकार के लोग अपना अमूल्य समय तथा शक्ति व्यर्थ गँवाते हैं। पाश्चात्य देखों में सेवानिवृत्त लोग अपना खाली समय ताश खेलने में, मछली पकड़ने में, दूरदर्शन देखने, सामाजिक-राजनैतिक विषयों के वाद-विवाद करने में व्यर्थ गँवाते हैं। इन सभी तथा अन्य अनेक बातों का समावेश प्रजल्प में होता है। कृष्णभावनामृत की ललक (रूची) रखने वाले बुद्धिमान् मनुष्य को इस प्रकार के कार्यकलापों में कदापि सहभागी नहीं होना चाहिए।

४. श्रील रूप गोस्वामी कृष्णकथा की प्रक्रिया के विषय में बताते हुए कहते हैं कि– निरर्थक वार्ता (बड़बड़) करने की अपनी प्रवृत्ति पर प्रतिबंध करने के लिए भगवान् श्रीकृष्ण से संबंधित विभिन्न विषयों पर चर्चा करनी चाहिए। इससे अपनी जब-जब बोलने की इच्छा होती है तब-तब कृष्णकथा करने की प्रवृत्ति आती है।

५. बातचीत आरम्भ करने से पूर्व पुष्टि कर लें कि–

–क्या यह आवश्यक है?

–क्या यह विनम्र है?

–क्या यह योग्य है?

६. भक्तों को अपमानसूचक शब्द नहीं बोलने चाहिए एवं विशेष रूप से भक्तों की निंदा से बचना चाहिए। भक्तों की निन्दा सबसे पहला नामापराध है। वैष्णव अपराध करने से हमारी भक्तिलता तुरन्त नष्ट हो जाती है।

छ. प्रचार

१. हमारे कार्य तथा हमारा आचरण प्रचार का सर्वोत्तम माध्यम है, क्योंकि हमारे 'कार्य' हमारे शब्दों की अपेक्षा अधिक प्रबलता से बोलते हैं। इस संदर्भ में एक

कहावत है– "आपके 'कार्यों की आवाज' इतनी अधिक है कि मुझे सुनाई नहीं दे रहा कि आप क्या बोल रहे हैं।"

२. प्रचार का अर्थ केवल अपनी बुद्धिमानी से अथवा वाक्पटुता से किसी को परास्त करना न होकर उसका 'हृदय परिवर्तन' करना है।

३. परन्तु स्वाभाविक रूप से इसका अर्थ यह नहीं है कि हम अपना तत्त्वज्ञान अच्छी तरह से न बताएँ। प्रत्येक भक्त को श्रील प्रभुपाद के ग्रंथों का गहन अध्ययन करके अच्छी तरह जानकर तथा जो नम्रतापूर्वक व ध्यानपूर्वक सुना अथवा पढ़ा है उसे दृढ़विश्वास से दूसरों के समक्ष प्रस्तुत करें।

४. अन्य पुस्तक पढ़ने की अथवा प्रचार कैसे करें यह सीखने के लिए अन्य तत्त्वज्ञानियों के पास जाने की आवश्यकता नहीं है। "आध्यात्मिक गुरु का नम्र सेवक एक सर्वोत्तम प्रचारक है।"

५. अंततोगत्वा लोगों का हृदय परिवर्तन, हमारे शब्दों द्वारा प्रस्तुत किये गये तत्त्वज्ञान से न होकर जो तत्त्वज्ञान हम जिस प्रमाण में अपने जीवन में उतारते हैं तथा अपने व्यवहार में साक्षात्कार करते हैं उसी प्रमाण में हमारे शब्द दूसरों का हृदय परिवर्तन कर सकते हैं।

६. सामान्यतया प्रचार करते समय श्रेष्ठता की भावना न होकर दूसरों की पूरी सहायता करने की नम्र भावना होनी चाहिए।

७. प्रचार करते समय हम केवल एक संदेशवाहक की तरह गुरु का संदेश दूसरों तक पहुँचायें; परन्तु यह करते समय हम अपने गुरु की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह से प्रचार कर सकते हैं, यह भावना कदापि मन में न लायें। हम जितनी निष्ठा से गुरु के

येन केन प्रकारेण मनः कृष्ण निवेशयेत

'किसी न किसी प्रकार से मनुष्य को निरन्तर भगवान् का स्मरण करना चाहिए।"

संदेशों का प्रचार करते हैं, उतनी ही हमें गुरुकृपा तथा सामर्थ्य की प्राप्ति होती है।

८. हम जिस व्यक्ति को प्रचार कर रहे हैं उसके प्रति सहानुभूति एवं चिंता दर्शाना अत्यन्त आवश्यक है। कभी-कभी उसकी छोटी-मोटी भौतिक समस्याओं का समाधान करने में मदद करना अत्यन्त आवश्यक होता है।

९. सदा सत्य बोलें, परन्तु सत्य बोलते समय भी देश, काल, पात्र को ध्यान में रखना अतिआवश्यक है। प्रचारक को प्रचार करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि लोगों को कृष्णभावनाभावित बनाना हमारा मूल उद्देश्य है तथा उसके लिए जो भी आवश्यक है उसे करना चाहिए।

प्रचार ही सार है

१०. भक्तिरसामृतसिन्धु में श्रील रूप गोस्वामी प्रचार के उद्देश्य का बहुत सुन्दर वर्णन करते हैं- *येन केन प्रकारेण मनः कृष्ण निवेषयेत्*-किसी भी प्रकार से व्यक्ति को सदा भगवान् कृष्ण का चिन्तन करना चाहिए।

११. प्रचार करते समय प्रचारक का अपने विचारों को संयमित रखना आवश्यक है। एक उत्तम प्रचारक अलग-अलग स्तरों पर भक्तों की आवश्यकताओं को अच्छी तरह पहचानता है। जिस प्रकार भौतिक जीवन में वकील, डॉक्टर, बैंक व्यवसायी, इन सभी की आवश्यकता होती है उसी तरह सामाजिक, आध्यात्मिक जीवन में वानप्रस्थी, संन्यासी इनं वैरागी व्यक्तियों तथा उनके साथ-साथ गृहस्थों की भी आवश्यकता रहती है। दोनों प्रकार के भक्त उतने ही महत्त्वपूर्ण तथा आवश्यक हैं।

१२. किसी व्यक्ति विशेष को प्रचार करते समय उस व्यक्ति की कृष्णभावना में वृद्धि के लिए क्या सर्वोत्तम है, इसका मार्गदर्शन करना चाहिए।

१३. समाज में प्रशिक्षित ब्रह्मचारी, प्रशिक्षित संन्यासी इन सभी की समान रूप से नितान्त आवश्यकता है। अतः कोई व्यक्ति जिस स्थिति में रहकर अपनी सर्वोत्तम आध्यात्मिक प्रगति करता है तथा गुरु महाराज के आन्दोलन में अपनी सर्वोत्तम सेवा का सहभाग दे सकता है, उसी स्थिति में रहने के लिए उस व्यक्ति को प्रेरित करना चाहिए। (यदि कोई गंभीर व्यक्ति प्रामाणिकता से वैरागी जीवन व्यतीत करना चाहता है तो उसे निरुत्साहित न करें। इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति गृहस्थ बनना चाहता हो तो उसे भी हतोत्साहित न करें।)

१४. दूसरे भक्त प्रचार कर रहे हों तब भी मूलभूत नियमों का पालन आवश्यक है। अत्यावश्यक कार्य न होने पर प्रचार में बाधा न लायें।

१५. मुस्कुराकर अभिवादन करना, सद्भावना देना, जिसे सहायता या मार्गदर्शन की आवश्यकता है उसकी उदार भाव से मदद करना, इस प्रकार की मूलभूत बातों का पालन करना आवश्यक है।

१६. नए लोगों को प्रचार करते समय प्रचारक को ध्यान में रखना चाहिए कि इन्हें प्रचार करना भक्तों को प्रचार करने जितना ही नहीं अपितु उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है।

नये भक्तों से बातचीत करके उन्हें घरेलू वातावरण का निर्माण करना चाहिए तथा उनका (नए भक्तों का) आदर सत्कार करते हुए अत्यन्त प्रेमपूर्वक योग्य देखभाल करें।

१७. मंदिर में होने वाले छोटे-बड़े उत्सवों के समय आने वाले अतिथि, नवोदित भक्त आदि की ओर पहले ध्यान देना चाहिए। इसी प्रकार नियमित आने वाले भक्त भी उपेक्षित न हों इसका ध्यान रखें।

१८. मंदिर के बाहर होने वाले कार्यक्रमों के समय, प्रवचन के पश्चात् प्रश्नोत्तर के समय, विशेष रूप से जब समय कम हो तब पहले नवोदित भक्तों तथा अतिथियों को उनका प्रश्न पूछने का अवसर देना चाहिए। कभी-कभी नवोदित भक्तों को अपनी शंका प्रस्तुत करने हेतु प्रोत्साहित करने के लिए वातावरण निर्माण करने के

लिए नियमित भक्त चुने हुए प्रश्न पूछें अथवा नवोदित भक्तों की शंका का समाधान होने के पश्चात् समय बचे तो नियमित भक्त अपने प्रश्न पूछ सकते हैं।

१९. भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा के नाम पर हम जिस प्रदेश में रहते हैं वहाँ के नियम-कानून को भंग करने का कभी भी प्रचार न करें। भक्तों को राजनैतिक, सामाजिक नियमों का ध्यान रखना आवश्यक है।

२०. प्रचारक को निर्मल जीवों के प्रति करुण होना चाहिए तथा अपराध टालना चाहिए।

२१. भक्तों को संकुचित मनोवृत्ति का नहीं होना चाहिए। सभी प्रामाणिक धार्मिक तथा आध्यात्मिक मार्गों का हमें आदर करना चाहिए। मुख्य रूप से अन्य वैष्णव सम्प्रदायों का हमें विशेष आदर करना चाहिए।

३. रसोईघर

१. रसोईघर मंदिर का विस्तारित रूप है, क्योंकि रसोईघर में जो अन्न पकाया जाता है उसे भगवान् को अर्पित किया जाता है। इसलिए रसोईघर में किए गये सभी कार्य श्रीविग्रहों की सेवा समझकर अत्यन्त ध्यानपूर्वक तथा सावधानीपूर्वक करने चाहिए।

२. कहीं-कहीं जहाँ मंदिर के समान विग्रहों की प्राण-प्रतिष्ठा की गई है, ऐसे स्थान पर अत्यन्त उत्तम दर्जे की विग्रह सेवा की अपेक्षा की जाती है, परन्तु घर में स्थित विग्रहों के संदर्भ में सेवा का वह स्तर रखना संभव नहीं होता, अतः कुछ मात्रा में छूट देने में कोई आपत्ति नहीं है। उदाहरण के लिए रसोईघर अथवा विग्रहों के सामने भोजन न करने का प्रावधान है, परन्तु कुछ घरों में मंदिर रसोईघर तथा भोजन-कक्ष एक ही कमरे में होता है इसलिए उपर्युक्त नियम का पालन संभव नहीं होता है। ऐसी परिस्थिति में विग्रहों के सामने पर्दा बंद कर देना चाहिए।

३. फिर भी गृहस्थों को सेवा के आदर्श स्तर का मन में पालन करना चाहिए तथा स्वयं की स्थिति के अनुसार जितना संभव हो उतना अच्छे स्तर का पालन करने का प्रयास करना चाहिए। हम प्रत्यक्ष भगवान् श्रीकृष्ण के लिए रसोई बना रहे हैं, यह हमें सदा ध्यान में रखना चाहिए। इन छोटी-छोटी नियामक तत्त्वों के पालन में जितनी अधिक जागरूकता होगी उतनी हमारे मन में यह भावना जागृत होगी कि हम स्वयं के रसोई न करके प्रत्यक्ष भगवान् श्रीकृष्ण के लिए रसोई बना रहे हैं।

४. रसोईघर में सेवा करते समय स्वच्छ एवं शुद्ध वस्त्रों का ही परिधान करें। बाहर जाते समय अथवा शौचक्रिया करते समय प्रयोग किये गये वस्त्रों को रसोईघर में न पहनें।

५. हाथों एवं पैरों के नाखून व्यवस्थित ढ़ंग से कटे हुए तथा स्वच्छ हों। रसोईघर में प्रवेश करने के बाद रसोई शुरु करने के पूर्व हाथ अच्छी तरह से धो लेने चाहिए। मंदिर में रसोई की सेवा आरम्भ करने के पूर्व स्नान करना अत्यावश्यक है। घर पर भी रसोई के पहले स्नान करना अतिउत्तम है।

६. रसोईघर में सेवा करते समय मुख में कोई भी वस्तु अथवा हाथ, कपड़ा इत्यादि न डालें।

७. रसोईघर के बर्तन धोने के स्थान का उपयोग जूठे हाथ धोने के लिए, कुल्ला करने अथवा थूकने के लिए न करें।

८. बनाये गये पदार्थों का स्वाद देखने के लिए उन्हें चखे नहीं।

९. विशेष रूप से जिस बर्तन में भगवान् के लिए भोग बनाया जाता है तथा जिस थाली तथा कटोरी में भगवान् को भोग अर्पित किया जाता है, उन सारे बर्तनों, थाली एवं कटोरियों को परिवार के अन्य सदस्य जिस बर्तन में प्रसाद लेते हैं उनसे अलग रखें तथा अलग धोयें।

१०. जिसे संसर्गजन्य रोग लगा हो उसे संभव हो तो रसोईघर में सेवा नहीं करनी चाहिए, क्योंकि ऐसे व्यक्ति के संसर्ग से 'भोग' तथा बर्तनों के दूषित होने की संभावना रहती है।

११. रसोईघर में सेवा करते समय कचरा रखने के पात्र, भूमि अथवा शरीर के अधोभाग का हाथ से स्पर्श होने पर तुरन्त हाथों को धोयें।

१२. रसोईघर में सेवा करते समय अनावश्यक न बोलें।

१३. रसोई करने के पूर्व तथा बाद में वहाँ के प्लेटफॉर्म (रसोई बनाने का उच्चस्थल), चूल्हा तथा बर्तन धोने के स्थान को अच्छी तरह धोयें।

१४. भूमि पर गिरी हुई कोई भी वस्तु यदि पुनः प्रयोग में लाने योग्य है तो शुद्धिकरण के पश्चात् ही उपयोग में लें। भूमि पर सब्जी गिरने पर उसे धोकर प्रयोग में लें।

१५. शौचायल में जाकर आने के पश्चात् स्नान किये बिना सीधे रसोईघर में प्रवेश न करें।

१६. अतिमहत्त्वपूर्णः भोग में बाल गिरकर वह दूषित न हो इसका भक्तों को सावधानीपूर्वक ध्यान रखना चाहिए। इस संदर्भ में अत्यधिक सतर्कता रखना आवश्यक है। रसोईघर में सेवा करते समय स्त्रियों को अपने बालों को अच्छी तरह कपड़े से बाँध कर रखना चाहिए।

१७. भगवान् को भोग दिखाने वाले बर्तन में से सीधे महाप्रसाद का सेवन न करें। दूसरे बर्तन में अथवा थाली में सबकुछ निकालकर भोग के बर्तनों को (थाली एवं कटोरी) धोने के बाद ही प्रसाद सेवन करें।

भाग ३

१. प्रसाद सेवन और वितरण

वैष्णव संस्कृति में प्रसाद सेवन और प्रसाद वितरण ये दोनों अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय हैं। जिस समय हम भोग बनाते हैं और अर्पित करते हैं उस समय की अपेक्षा उसे आदरपूर्वक वितरित और ग्रहण करते देखकर श्रीकृष्ण और गुरु अधिक प्रसन्न होते हैं।

१. सर्वप्रथम एवं प्रमुख नियम यह है कि भक्तों को केवल प्रसाद अर्थात् भगवान् श्रीकृष्ण को भक्तिभाव से अर्पित अन्न ही ग्रहण करना चाहिए।

२. भक्तों को–

– भक्तों द्वारा बनाई गई,

– भक्तों द्वारा भगवान् को अर्पित की गई,

– भक्तों द्वारा परोसा गया अन्न ही ग्रहण करना चाहिए। सामाजिक जीवन की मर्यादा व प्रचार की आवश्यकता के अनुसार जितना संभव हो तथा व्यवहार करने योग्य हो उपरोक्त नियमों के आदर्श का पालन करें।

३. जब तक प्रचार तथा सेवा के लिए अत्यधिक आवश्यक न हो तब तक अभक्तों द्वारा बनाया गया अन्न बिल्कुल ग्रहण न करें।

४. उपरोक्त भावना से ही चॉकलेट, आइस्क्रीम, चिप्स, बिस्कुट, शीतलपेय तथा ब्रेड (पाव) जैसी बाजारु वस्तुओं को घर में वर्जित करें। घर पर आये अतिथि को भी घर पर बनाए गये पदार्थ तथा नींबू शरबत, फलों का रस जैसी प्राकृतिक चीजें ही दें।

५. यदि सम्भव हो तो रात को दही एवं मटर (बटाना) का सेवन न करें।

६. यात्रा में अथवा विकल्प न होने पर चुनी हुई बाजारु वस्तुएँ खरीदें। बाजारु वस्तुओं की अपेक्षा खाने का डब्बा (घर पर तैयार खाद्य सामग्री से भरा) अथवा फल, दाना, दूध तथा सूखा हुआ खाद्य पदार्थ साथ में लेना उत्तम है।

७. कभी-कभी प्रचार या सेवा के लिए अथवा व्यावसायिक कारणों से लम्बे प्रवास के दौरान भोजनालय अथवा होटल में जाना पड़ता है, ऐसे समय में शुद्ध शाकाहारी भोजनालय का ही चयन करें, तथा प्याज और लहसुन रहित पदार्थ ही मँगवायें। (माँसाहारी भोजनालयों में एक ही बर्तन में रसोई बनाने की संभावना रहती है।)

८. भक्तों को सात्त्विक आहार ही ग्रहण करना चाहिए तथा राजसिक अर्थात् तैलीय, अति मसालेदार तथा महँगे खाद्य पदार्थों को टालना चाहिए।

९. घर पर प्रसाद योग्य विधि से भगवान् को अर्पित किया हुआ हो। (परिशिष्ट २ देखें)

१०. परिवार के सभी सदस्यों के प्रसाद ग्रहण कर लेने के पश्चात् बचा हुआ प्रसाद संभव हो तो अगले भोजन के लिए सुरक्षित रख लें अन्यथा बाहर जरुरतमंद लोगों में वितरित कर दें।

१. प्रसाद वितरण

१. यदि सम्भव हो तो दीक्षित भक्त ही प्रसाद का वितरण करें। वितरण करने वाले भक्तों का मन, शरीर, आदतें और वस्त्र स्वच्छ एवं शुद्ध होने चाहिए। वितरण के समय जितना हो सके उच्चस्वर में बोलने को टालना चाहिए।

२. प्रसाद बाँटने का क्रम

–सबसे पहले पानी दीजिए

–जब गौड़ीय वैष्णव प्रसाद बाँटते हैं तो वे कटु सब्जी शुक्ता या शाक से आरम्भ करते हैं।

–उसके पश्चात् दाल या तले पदार्थ जैसे पकौड़े इत्यादि परोसे जाते हैं।

–उसके पश्चात् सब्जी परोसिये; पहले रसेदार बाद में सूखी।

–उसके पश्चात् रायता और चटनी।

–अन्त में मीठे व्यंजन।

–चपाती और चावल आरम्भ से अन्त तक आवश्यकतानुसार परोसिये। (यदि सम्भव हो तो चपाती गरम दें)

३. प्रसाद ग्रहण करते समय जूठे हाथों से दूसरे बर्तन को स्पर्श न करें। दूसरों को परोसने के लिए कहें अथवा स्वयं हाथ धोकर अपने लिए परोसें।

४. प्रसाद सदैव थाली में खाली स्थान में परोसें। मिष्ठान और नमकीन व्यंजनों को अलग-अलग परोसें।

५. प्रसाद परोसते समय व्यक्ति के हाथ में न दें किन्तु यदि प्रसाद अत्यन्त अल्प है तो हाथों में दे सकते हो।

६. सूखें मिष्ठान के अलावा सभी प्रकार के प्रसाद को चम्मच द्वारा ही परोसें; यहाँ तककि नमक भी।

७. केवल दायें हाथ से ही परोसें। परोसते समय किसी भी दूषित वस्तु को हाथ न लगायें, जैसे, मुँह, पैर, बाल या शरीर का निचला हिस्सा इत्यादि या जंभाई लेना, छींकना या थूके नहीं। अपरिहार्य स्थिति आने पर बाद में हाथ धो लें।

८. जब घर पर अतिथि आयें तो भगवान् को अर्पित महाप्रसाद सभी को थोड़ा-थोड़ा वितरित करें और तत्पश्चात् आवश्यकतानुसार गरम-गरम प्रसाद परोसें। गुरु और संन्यासियों के लिए इसी रीति से ही प्रसाद परोसें।

९. यदि प्रसाद की मात्रा कम है तो वितरित करने वाले व्यक्ति को चाहिए कि सभी को समान मात्रा में प्रसाद वितरित करें किन्तु उसे वितरित करते समय उसे अत्यन्त

उत्साह से वितरित करना चाहिए।

१०. सम्भव हो तो प्रसाद पाने वाले व्यक्ति को प्रसाद के गुण बतायें; परन्तु यदि आवश्यक हो तो शान्त रहें। प्रसाद के दौरान कैसेट या पुस्तक सुनना अत्यन्त लाभदायक है। हम 'श्रीकृष्ण' या 'श्रील प्रभुपाद लीलामृत' जैसी पुस्तकें पढ़ सकते हैं।

११. साथ-साथ बैठे भक्तों को समान मात्रा में प्रसाद परोसें। भक्तों की संख्या अधिक होने पर पंक्तिभेद न करें। यदि सम्भव हो तो विशेष प्रकार का प्रसाद लेने वाले अलग बैठें।

१२. प्रसाद अथवा प्रसाद के बर्तनों को पैरों से स्पर्श न करें। गलती से स्पर्श होने पर उन्हें दायें हाथ से स्पर्श कर मस्तक पर लगायें।

१३. प्रसाद वितरित करने वाले बर्तन (जैसे बाल्टी) को भूमि पर खींचे नहीं और बाँटते समय बर्तनों के टकराव की आवाज न करें।

१४. प्रसाद के पश्चात् स्थान को तुरन्त साफ कर दें और गिरे प्रसाद को कूड़ेदान में डाल दें।

१५. गुरु का महाप्रसाद नये भक्तों के समक्ष वितरित न करें।

२. प्रसाद सेवन

१. प्रसाद लेने से पूर्व अपने हाथों, पैरों एवं मुँह को धोना आवश्यक है।

२. प्रसाद लेने से पूर्व पुरुष अपनी शिखा बाँधें, सिर खुला रखें, पैर ढके हों और चप्पल या जूतें,न पहनें।

अधिक जानकारी हेतु कृपया परिशिष्ट ४ देखें। पृष्ठ क्र.६६

३. प्रसाद सदैव स्वच्छ, शान्तमय एवं खुले स्थान में लें।

४. प्रसाद लेने से पूर्व योग्य प्रार्थनाओं का उच्चारण करें।

५. प्रसाद भगवान् की कृपा है और भगवान् से अभिन्न है। इस भावना से प्रसाद ग्रहण करें। प्रसाद ग्रहण करते समय यदि प्रचार के लिए आवश्यक हो तभी बोलना चाहिए अन्यथा शान्तिपूर्वक प्रसाद ग्रहण करना चाहिए। प्रसाद ग्रहण करते समय टेपरिकार्डर पर प्रवचन अथवा कीर्तन सुनना अधिक लाभदायक है।

६. प्रसाद सेवन करते समय जब वरिष्ठ वैष्णव उपस्थित हों तो उनके प्रसाद ग्रहण करने तक संयमपूर्वक प्रतिक्षा करें। उनके पश्चात् ही हमें प्रसाद ग्रहण करना है। (कुछ विशिष्ठ परिस्थितियों में वरिष्ठ वैष्णवों की अनुमति से पहले प्रसाद लिया जा सकता है।)

७. प्रसाद व्यर्थ न गँवायें। यदि थाली में आवश्यकता से अधिक प्रसाद हो तो उसे पहले ही दूसरी थाली में निकाल कर रखे।

८. प्रसाद लेते समय शरीर के अन्य भागों का स्पर्श करने के लिए बायें हाथ का स्पर्श करें।

९. प्रसाद लेते समय झूठे हाथों से बर्तनों को स्पर्श न करें एवं किसी अन्य व्यक्ति को परोसने के लिए कहें; यदि कोई न हो तो हाथ धोकर स्वयं ले लें।

१०. प्रसाद सेवन् आरम्भ करने के पश्चात् अन्य किसी भी स्थान को दाहिने हाथ से स्पर्श न करें।

११. सम्भव हो तो सूर्योदय, सूर्यास्त, मध्य रात्रि और स्नान से पहले प्रसाद न लें।

१२. जब तक पहले खाया गया भोजन पच न गया हो फिर से प्रसाद न लें।

१३. पाँवों को फैलाकर एवं जंघा पर थाली रखकर प्रसाद न लें। आयुर्वेद के अनुसार अर्ध-पद्मासन में बैठकर प्रसाद स्वास्थ्य के लिए लाभदायक है।

१४. प्रसाद स्वीकारने से पहले उसे देखकर इस भाव से सम्मान अर्पित करें कि यह भगवान् की कृपा से अभिन्न है।

१५. प्रसाद ग्रहण करते समय थाली में अथवा आसपास न थूकें।

१६. रास्ते पर चलते समय अथवा किसी भी तरह की यात्रा में, जहाँ दूसरे लोगों की दृष्टि हम पर है, ऐसे स्थान पर प्रसाद ग्रहण न करें। प्रसाद संभवतः एकान्त अथवा जहाँ आसपास के भक्त प्रसाद ले रहे हों ऐसे स्थान पर ग्रहण करें।

३. खाने और पानी पीने के नियम

१) खाते समय अथवा पीते समय कष्टदायक आवाज न करें। प्रसाद के स्वाद के बारे में दोष न निकालें।

२) प्रसाद खाने के लिए अपने दाहिने हाथ की पाँच अंगुलियों का ही प्रयोग करें। अंगुलियों से खाना अधिकृत है क्योंकि पाचन-क्रिया अंगुलियों के सूक्ष्मतम स्पर्श से ही आरम्भ होती है। शरीर के दूसरे भागों को स्पर्श करने के लिए बायें हाथ का प्रयोग करें।

३) बायें हाथ का प्रयोग केवल पानी का गिलास उठाने के लिए करें। गिलास को मुँह लगाकर पानी पीना टालें।

४) पानी पीने के बाद भी हाथ धोयें।

५) दाहिने हाथ की अंगुलियों से पदार्थ (चपाती इत्यादि) के बड़े टुकड़ों को तोड़कर निवाला ग्रहण करें। बायें हाथ का प्रयोग का न करें।

४. प्रसाद की मात्रा

१) प्रसाद संतुलित मात्रा में और दिन के निर्धारित समय पर ही ग्रहण करें।

२) आवश्यकता से अधिक खाना रोग को निमंत्रण देना है। अत्याहार और अयोग्य पदार्थ स्वास्थ्य के साथ-साथ आध्यात्मिक प्रगति के लिए भी हानिकारक है। सभी को इस प्रकार से खाना चाहिए कि उदर के आधे भाग में अन्न, चौथाई भाग में जल और चौथाई में वायु हो।

३) आहार पर नियंत्रण रखने से जिह्वा पर नियंत्रण रखने में और परिणामस्वरूप अन्य इंद्रियों पर नियंत्रण रखने में सहायता मिलती है।

५. प्रसाद के बाद

१) उठने के पहले विशेष प्रेमध्वनि का उच्चारण करें। (जय जय श्रीराधेऽऽऽ श्याम)

२) प्रसाद सेवन करने के पश्चात् अथवा सेवन के पूर्व भगवान् की स्तुति हेतु प्रार्थना अथवा श्लोक बोलें।

३) यदि अन्य भक्त अभी प्रसाद ले रहे हों तो उनके आदर हेतु कुछ समय प्रतीक्षा करें एवं सभी साथ में ही उठें। वरिष्ठ भक्तों को पहले अवसर दें। अपरिहार्य परिस्थितियों में वरिष्ठ भक्तों की अनुमति लेकर पहले उठा जा सकता है।

४) प्रसाद के पश्चात् तुरन्त अपने हाथ धोने चाहिए। सम्भव हो तो पैर भी धोने चाहिए।

५) प्रसाद के तुरन्त बाद आराम या अधिक मेहनत का कार्य न करें।

६) प्रसाद लेते समय नामस्मरण या कृष्णकथा करके हम जो मन की शान्तिमय अवस्था उत्पन्न करते हैं उसे बाद में भी कायम रखें।

७) प्रसाद के बाद जिस स्थान पर बैठे थे उसे पानी से साफ करें।

भाग ४

भक्तों से संबंध (व्यवहार)

१. भक्तों के तीन स्तर–

भक्तिरसामृतसिन्धु में श्रील रूप गोस्वामी कहते हैं कि, "जो भक्त भगवान् श्रीकृष्ण के पवित्र नामों का जप करता है उसे मानसिक रूप से आदर दें तथा जो भक्त दीक्षित हैं उन्हें नम्रतापूर्वक प्रणाम करें तथा जो शुद्ध भक्त भगवान् की अहैतुकी सेवा में बिना विचलित हुए संलग्न है तथा जिनका हृदय निन्दक प्रवृत्ति से रहित (निंदादिशून्य) है, ऐसे शुद्ध भक्तों का संग लेना चाहिए तथा दृढ़ श्रद्धा से उनकी सेवा करनी चाहिए।

२. आध्यात्मिक गुरु से व्यवहारः-

- सभी को प्रामाणिक होना चाहिए। आज्ञाकारी प्रवृत्ति युक्त एवं नम्र होकर गुरु की सेवा करनी चाहिए।
- गुरु की आज्ञा को स्वयं का (प्राण) जीवन समझना चाहिए।
- गुरु की उपस्थिति में, उनकी आज्ञा के बिना दूसरों को उपदेश न दें।
- गुरु के (जीवित) होते हुए शिष्य स्वीकार न करें।
- गुरु को अपने गुरुबंधु द्वारा दीक्षित शिष्यों को पुनः दीक्षा नहीं देनी चाहिए।
- गुरु की आज्ञा का केवल पालन करें उनसे उल्टे प्रश्न न करें। उनके मन का सही आशय हमें मालूम है, ऐसा विचार करके गुरु के उपदेशों का कदापि उल्लंघन न करें।
- स्वयं के गुरु को कभी भी उपदेश न दें। यदि किसी को लगे कि मेरे द्वारा दी जाने वाली जानकारी गुरु महाराज के लिए शायद उपयुक्त हो, तो व्यक्ति को विनम्रतापूर्वक ही इस तरह की जानकारी गुरु के समक्ष प्रस्तुत करनी चाहिए।
- किसी को भी गुरु के साथ वाद-विवाद नहीं करना चाहिए।
- किसी को भी अपनी योग्यता गुरु के समक्ष दिखावे के रूप में नहीं दिखाना चाहिए; अपितु सदा विनम्र भाव से रहना चाहिए।
- जब तक उनकी आज्ञा नहीं मिलती है, तब तक आध्यात्मिक गुरु के समक्ष बराबर आसन पर न बैठें।
- जिस प्रकार श्रीकृष्ण अपने नाम एवं चित्र (तस्वीर) से अभिन्न हैं, उसी प्रकार गुरुभी अपने नाम एवं तस्वीर से अभिन्न हैं। इसलिए किसी को भी श्रीकृष्ण अथवा गुरु की तस्वीरों को यहाँ-वहाँ फेंकना नहीं चाहिए।

- जब तक गुरु की आज्ञा तथा आशीर्वाद नहीं मिलता तब तक पारंपरिक गुरु द्वारा लिखित पुस्तकों के अतिरिक्त अन्य कोई भी पुस्तक किसी को भी नहीं पढ़नी चाहिए।
- आध्यात्मिक गुरु की सेवा का अर्थ है, उनके शिष्यों की सेवा।

३. वरिष्ठ वैष्णवों के साथ व्यवहारः-

- वैष्णव परंपरा में अपने से ज्येष्ठ वैष्णवों के प्रति समर्पण का भाव तथा उन्हें उचित सम्मान देना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।
- ज्येष्ठता की श्रृंखला में सबसे ज्येष्ठ गुरु हैं, जिन्हें भगवान् के प्रतिनिधि के समान सम्मानित देना चाहिए। इसलिए हम जिस प्रकार श्रीकृष्ण का सम्मान करते हैं, उसी प्रकार उनके प्रतिनिधि का भी योग्य सम्मान करें।
- इनके पश्चात् संन्यासी का क्रम आता है। संन्यासियों में श्रेष्ठता का विचार करते समय जिन्होंने पहले संन्यास दीक्षा ली है उन्हें ज्येष्ठ संन्यासी समझना चाहिए।
- जब दिन में पहली बार हम संन्यासी को देखें, तब पूरे आदर के साथ साष्टांग प्रणाम करें।
- मायावादी संन्यासियों का संग हम नहीं करते हैं, फिर भी उन्हें योग्य सम्मान देना आवश्यक है।
- इनके पश्चात् गुरु महाराज के गुरु बंधु का क्रम आता है। उनका भी हमें उसी प्रकार सम्मान करना चाहिए जैसा हम अपने आध्यात्मिक गुरु का सम्मान करते हैं।
- जिन भक्तों ने ब्राह्मण दीक्षा ली है, उनका भी सम्मान करना चाहिए। उनकी ज्येष्ठता, किसने पहले दीक्षा ली है, इस क्रम से करें।
- जिन भक्तों ने अपने से पहले हरिनाम दीक्षा ली है उनको भी हमें योग्य सम्मान देना चाहिए।
- जो भक्त आयु में ज्येष्ठ हैं उन्हें विशेष सम्मान दें।
- ज्येष्ठ वैष्णवों के उपस्थिति में उनकी अनुमति के बिना दूसरों को उपदेश न करें।
- दो वरिष्ठ वैष्णवों में वाद-विवाद के समय हमें तटस्थ भूमिका स्वीकार करते हुए किसी का भी पक्ष नहीं लेना चाहिए।
- आरती होने के पश्चात् भक्तों को आरती देते समय ज्येष्ठता का विचार करना आवश्यक है।

४. गुरुबंधु-भगिनी (गुरुभाई-बहन) से व्यवहारः-

- गुरुबंधु एक दूसरे को 'प्रभु' संबोधित्त करें। फिर भी किसी को भी प्रभु होने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए, क्योंकि हम ऐसे संबोधित किये जाते हैं अतः हमें सेवक रहते हुए दूसरों को प्रभु मानना चाहिए।

- हम अपने गुरुबंधु के सेवक हैं अतः गुरुबंधु के विशिष्ट स्तर के अनुसार उनकी सेवा करें।
- अत्यन्त विनम्रता से हमें ज्येष्ठ गुरुबंधु से जिज्ञासा करनी चाहिए, उनके उपदेशों का पालन करना चाहिए तथा उनके प्रामाणिक सेवक होने की महत्वकांक्षा पालनी चाहिए।
- अपने समकक्ष गुरुबंधु की सेवा हम उनके मित्र बनकर, उनकी सहायता करके, उन्हें भक्ति मार्ग में प्रेरित करके करें।
- जो हमसे कनिष्ठ हैं, उनकी सेवा हमें उन्हें योग्य मार्गदर्शन करके, प्रोत्साहन देकर तथा ज्ञान देकर करनी चाहिए।
- हम जब दूसरे गुरुबंधुओं से मिलते हैं तब नीचे झुककर यह प्रार्थना बोलनी चाहिए–

  वाञ्छा कल्पतरुभ्यश्च कृपासिन्धुभ्येव च।
  पतितानां पावनेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमो नमः ॥
- आध्यात्मिक गुरु की आज्ञा के बिना गुरुबंधु को अपने व्यक्तिगत सेवक के रूप में कदापि स्वीकार न करें।
- भक्तों से संबंध स्थापित करते समय *"अतिपरिचयात् अवज्ञा"* इस युक्ति को कभी भी स्थान न दें। भक्तों का एक-दूसरे के प्रति व्यवहार सम्मानपूर्वक, अपराधरहित तथा छल-कपट से रहित होना चाहिए।
- भक्तों को एक-दूसरे के प्रचलित नाम(कर्मी नाम) से नहीं पुकारना चाहिए।
- किसी को भी अपनी स्तुति, अपने कृत्यों एवं अपनी योग्यता की बड़ाई दूसरे भक्तों के सामने नहीं करनी चाहिए। सभी को यह जानकारी होनी चाहिए कि उनकी कोई भी योग्यता नहीं है। हम जो भी करने के योग्य हैं वह केवल गुरु एवं वैष्णवों की कृपामात्र से हैं।
- यदि गुरुबंधु या गुरुबहन किसी कारणवश कष्ट में हों, जैसे परिवार में किसी की बीमारी अथवा किसी सदस्य की मृत्यु अथवा किसी कारण से उत्पन्न मानसिक उद्वेग हो, ऐसे समय सांत्वना एवं उनकी यथासम्भव सहायता करनी चाहिए। "संकट के समय आवश्यकता होने पर जो मदद करता है वही सच्चा मित्र है।" भक्तों के आपसी संबंध की परीक्षा मुसीबत के समय ही होती है। इन घटनाओं के समय उन्हें भौतिक समझकर हमें उन्हें दुर्लक्ष (नजरअंदाज) नहीं करना चाहिए।
- यदि कोई भक्त किसी कारणवश भक्तिसेवा के मार्ग से पथभ्रष्ट हो गया/ गई हो तथा काफी दिनों से भक्तों के संग में न हो तो 'वह माया में है' ऐसा कहकर उसका तिरस्कार न करें। अथवा उस पर इस प्रकार की टिप्पणी न करें जिससे वह आध्यात्मिक गुरु के चरणकमलों से पुनः दूर चला जाये। प्रत्येक व्यक्ति द्वारा उसे प्रेम, उत्साह एवं मैत्री मिलनी चाहिए, जिससे उसे यह आभास हो कि वह पुनः अपने घर एवं भक्तों के संग में वापस आ गया/ गयी है।

५. वैष्णव संबोधनः–

- श्रील प्रभुपाद को ''कृष्णकृपाश्रीमूर्ति'' संबोधित करें। तथा गुरु एवं संन्यासियों को ''परम पूजनीय''।
- ब्रह्मचारियों के नाम के पश्चात् ''ब्रह्मचारी'' संज्ञा होनी चाहिए। जैसे कृष्णदास ब्रह्मचारी।
  गृहस्थों को ''अधिकारी'' सर्वनाम तथा संन्यासी को ''महाराज'' (कभी-कभी ''स्वामी'' या ''गोस्वामी''' के सर्वनाम से संबोधित करें।
- गुरुबंधु के नाम का आरम्भ ''श्रीमान्'' शब्द से करें।

६. अन्य भक्तः–

हमें उन्हें सम्मान देना चाहिए। परन्तु निम्नलिखित प्रकार के भक्तों से किसी को भी संग नहीं करना चाहिए–

क. खराब अथवा संशयास्पद चरित्र का व्यक्ति।
ख. सहजिया (जो श्रीराधा-कृष्ण की दिव्य लीलाओं को प्राकृत समझकर स्वयं उनका अनुकरण करने की चेष्ठा करता है।)
ग. ऐसे वैष्णव जिनका सम्प्रदाय संशयास्पद है। तथा,
घ. मायावादी संन्यासी।

७. वैष्णवों को सामान्य भौतिक दृष्टि से न देखेंः–

> *''.... वैष्णवों को सामान्य दृष्टि से बिल्कुल न देखें। प्रत्येक भक्त को चाहिए कि वे निम्नकुल में जन्में भक्त, भक्तों के शारीरिक वर्ण, कुरुप या रोगग्रस्त भक्तों के शरीर की ओर ध्यान न दें।'' (श्रील रूप गोस्वामी)*

- श्रील रूप गोस्वामी ने अपनी पुस्तक श्रीउपदेशामृत में वैष्णवों के बारे में कहा है, ''ऐसे भक्तों को सामान्य भौतिक दृष्टिकोण से कदापि न देखें। वास्तव में सभी को निम्न कुल में जन्में भक्त, उनके शरीर के कुरूप वर्ण, उनके विकृत शरीर अथवा उनके रोगग्रस्त या दुर्बल शरीर की ओर ध्यान नहीं देना चाहिए।
- दूसरे शब्दों में सभी भक्तों को शारीरिक विकृति, कुरूपता, निम्न कुल में जन्म

और अल्पशिक्षा इत्यादि की पूरी तरह उपेक्षा कर देनी चाहिए। जो भी वैष्णव भगवान् की सेवा करता है उसे पवित्र समझना चाहिए।

– शास्त्रों में प्रतिपादित किया गया है कि ऐसा सोचना कि यह वैष्णव किसी विशेष जाति अथवा पंथ में जन्म लेने के कारण एक सामान्य मनुष्य है, नारकीय बुद्धि का लक्षण है।

८. वैष्णवों का शरीर एक मंदिर है:–

– विष्णु मंदिर के दृष्टिकोण से ही एक वैष्णव के शरीर को भी देखना चाहिए। इसलिए वैष्णवों को साष्टांग प्रणाम करते समय हम उनके हृदयस्थ श्रीविष्णु (परमात्मा) को साष्टांग प्रणाम करते हैं। हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए।

– इसलिए हमें कभी भी वैष्णवों के शरीर को लांघकर आगे नहीं जाना चाहिए।

९. वैष्णवों की कृपा की आवश्यकता:–

– किसी को भी अपने व्यक्तिगत जीवन में उत्तरदायित्व की कोई भी सेवा आरम्भ करने से पहले वैष्णवों का आशीर्वाद प्राप्त करना चाहिए।

– हमें सदा यह आभास होना चाहिए कि हम सदा भी वैष्णवों की कृपा पर ही अवलंबित है।

१०. वैष्णवों में प्रेम का व्यवहार:–

– श्रील रूप गोस्वामी ने उपदेशामृत ग्रंथ में कहा है कि, ''वैष्णवों में एक-दूसरे के प्रति छह प्रकार के प्रेम संबंध होते हैं–

ददाति प्रतिगृह्णाति गुह्यमाख्याति पृच्छति।
भुङ्क्ते भोज्यते चैव षड्विधं प्रीतिलक्षणम्॥

क. उपहार देना,
ख. उपहार स्वीकार करना,
ग. उदारतापूर्वक विश्वास करना,
घ. भगवद्सेवा के लिए समर्पित इच्छा (अथवा प्रचार करना),
च. प्रसाद स्वीकार करना,
छ. प्रसाद वितरण करना।

– जब कोई मंदिर आता है तब भक्तिसेवा में नित्य संलग्न रहने के लिए उसे वैष्णवों से प्रसाद स्वीकार करना चाहिए।

– गृहस्थों का यह कर्तव्य है कि उन्हें वैष्णवों को अपने घर प्रसाद के लिए निमंत्रित

करें।

– सबसे मूल्यवान् उपहार जो हम दे सकते हैं और ले सकते हैं, वह अमूल्य उपहार है कृष्णकथा एवं कृष्णभावना का दिव्य ज्ञान।

– जो गृहस्थ मंदिर के बाहर रहते हैं उन्हें सब कुछ परित्याग किये हुए भक्तों को अपने घर प्रवचन देने के लिए आमंत्रित करने का प्रयत्न करना चाहिए।

११. वैष्णव अपराधः–

– भक्त का अर्थ है, उसे सभी परिस्थितियों को तथा भौतिक उतार-चढ़ाव को सहन करना चाहिए। वह भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा में पूरी तरह से संलग्न रहने के कारण अन्य वैष्णवों के दोष तथा उनपर क्रोधित होना आदि के लिए उसके पास समय ही नहीं रहता है। भक्त अर्थात् अन्यों के प्रति अत्यन्त सहानुभूति एवं करुणा करने वाला इसलिए किसी भी परिस्थिति में उसे एक सभ्य व्यक्ति के समान रहना चाहिए।

–श्रील प्रभुपाद

– जब कोई वैष्णव अपराध करता है तब वह सम्पूर्ण धार्मिकता, ऐश्वर्य, यश तथा संतान से हीन हो जाता है।

– जो कोई वैष्णवों को मारता है, अपशब्द बोलता है, अनादर करता है अथवा क्रोधी होता है तथा वैष्णवों को देखकर हर्षित नहीं होता है वह निश्चय ही नरक में जाता है।

चार प्रकार के वैष्णव अपराधः–

क) निम्न जाति के कारण वैष्णवों में दोष देखना।

ख) उनके पूर्व की गलतियों के बारें में अपशब्द बोलना।

ग) अनजाने में हुई गलतियों के कारण उन्हें टोकना।

घ) गलतियों को सुधारने के पश्चात् भी उन्हें अपमानित करके बोलना।

किस प्रकार वैष्णव अपराध नष्ट होता हैः–

यदि किसी ने वैष्णव अपराध किया हो तो उसे तुरन्त उस वैष्णव के चरण पकड़कर क्षमा याचना करनी चाहिए। वैष्णव दयालु होते हैं, अतः वे तुरन्त क्षमा कर देंगे।

१२. वैष्णवों की गलतियाँ सुधारना

वैष्णवों की गलतियों को सुधारते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान दें–

क) हमें द्वेषरहित होना चाहिए,

ख) हमारे हृदय में उस भक्त के प्रति कृष्णभावनाभावित रूप से सहायता करने की सच्ची इच्छा होनी चाहिए।

ग) इस प्रकार का कार्य आध्यात्मिक रूप से एवं व्यवस्था के अनुसार योग्य तथा मदद

करने वाला हो।

घ) उस भक्त ने स्वयं को निर्देश देने के लिए आपसे अनुरोध किया हो।

च) गलतियाँ बताने वाले भक्त का व्यवहार 'जैसी कथनी वैसी करनी' जैसा होना चाहिए।

छ) किसी को उसकी गलतियाँ बताने की विधि–

- स्वयं के उदाहरण अथवा संग देकर गलतियाँ सुधारने के लिए कहना,
- वरिष्ठ एवं उन्नत भक्त के पास जाने के लिए कहना,
- कनिष्ठ भक्त स्वयं गलतियाँ बताने का प्रयत्न न करें, अपितु वरिष्ठ भक्त की मदद से यह कार्य करें।

ज) किसी प्रामाणिक भक्त की गलती सुधारने के लिए कठोर शब्दों प्रयोग न करें और न ही उन्हें कठोर दण्ड दें। हमें भक्तों के हृदय को सुधारना है उसे त्यागना नहीं है।

झ) यदि किसी ने हमारे दोष दिखाये हैं तो दुःखी न होकर हमें कृतज्ञ होना चाहिए। सही गलतियाँ स्पष्ट रूप से निकालने के बाद भी विपरीत आचरण अहंकार का लक्षण है।

ट) वैष्णव अपनी गलती सुधारने को भगवान् की कृपा समझते हैं।

१३. माताओं (स्त्रियों) से व्यवहार:–

अधिक जानकारी हेतु कृपया परिशिष्ट ६ देखें। पृष्ठ क्र.६८

- स्त्रियों को सभी प्रकार का उचित सम्मान दें। विशेष रूप से यदि वह वैष्णवी है तो उसे वैष्णव पद्धति से संबोधित करें।
- ब्रह्मचारी को चाहिए कि प्रत्येक स्त्री को माता के रूप में देखें। गृहस्थ अपनी पत्नी के अतिरिक्त प्रत्येक स्त्री को माता के समान देखें।
- ब्रह्मचारी केवल महत्त्वपूर्ण भक्ति सेवा के कार्य हेतु ही माताओं के संपर्क में रहें, इससे अधिक नहीं।
- स्त्री का अपमान न करें।
- स्त्रियों से द्वेष न करें।

१४. अतिथियों से व्यवहार:–

जब कोई अतिथि अपने घर अथवा मंदिर में आते हैं तब उनसे पूर्ण प्रेम एवं आदरपूर्वक व्यवहार करें। उनका स्वागत मधुर शब्दों से करें। अपनी क्षमतानुसार बैठने का आसन, जलपान (अल्पाहार) एवं प्रसाद की व्यवस्था करें।

१२. अभक्तों से व्यवहार

१. किसी भी अभक्त को चरणस्पर्श न करने दें। परन्तु यदि वे बहुत अधिक आग्रह करें और उसे टालने का कोई मार्ग न हो तो जब वे चरणस्पर्श करें तब पूर्व आचार्यों एवं आध्यात्मिक गुरु का स्मरण करते हुए उनका प्रणाम स्वीकार करें एवं प्रतिक्रिया स्वरूप दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करें।

२. दो प्रकार के अभक्त

- हमें निरपराध व्यक्तियों का शुभचिंतक होना चाहिए, आदरपूर्वक उन्हें अधिक ज्ञान देने का प्रयत्न करना चाहिए। उन्हें अपने आध्यात्मिक गुरु का संग प्राप्त करवायें, परन्तु उन्हें आनन्द देने वाली भौतिक क्रियाओं में संलग्न होकर उनका संग न लें।
- नास्तिकों को हमें टालना चाहिए। पवित्र नाम के विषय में नास्तिकों को उपदेश देना, पवित्र नाम के प्रति एक अपराध है। यदि वे विनम्रतापूर्वक पवित्र नाम की महिमा के बारे में हमसे श्रवण करना चाहते हैं तो हम उन्हें पवित्र नाम के महत्त्व के विषय में उपदेश दे सकते हैं।

३. अभक्तों से व्यवहार

- यदि अभक्त व्यक्ति हमारा मित्र हैं तो हाथ जोड़कर हम 'हरे कृष्ण' कह सकते हैं।
- यदि अभक्त व्यक्ति वरिष्ठ संबंधी हो तो हम 'हरे कृष्ण' कहकर झुककर नमस्कार कर सकते हैं।

४. यदि हमारे समक्ष कोई व्यक्ति गुरु, वैष्णव अथवा शास्त्रों के विरोध में कुछ कहें तो हमें उस व्यक्ति को तो उसे शांतिपूर्वक तथा विस्तार से प्रमाण देकर सन्तुष्ट करना चाहिए। किन्तु यदि यह संभव न हो तो तुरन्त वह स्थान छोड़कर चले जाना चाहिए। इस प्रकार की अपराधयुक्त बातें सुनना आध्यात्मिक प्रगति के मार्ग में एक बहुत बड़ी बाधा है।

५. लोगों से व्यवहार करते समय अपने अहंकार का त्याग करें।

६. लोगों में अपने क्रोध को प्रकट न करें। विनम्रता एवं सहनशीलता से हम क्रोध एवं चिंता पर विजय प्राप्त कर सकते हैं।

७. सार्वजनिक स्थानों पर बैठकर व्यर्थ वार्तालाप न करें।

८. मूर्ख, पापी, पीड़ित, कुरूप, पतित एवं अपंग व्यक्ति का उपहास न करें।

भाग ५

१. साधना

कृष्णभावना में आचरण करते समय व्यक्ति को अनेक (सकारात्मक और नकारात्मक) नियामक तत्त्वों को स्वीकार एवं दृढ़तापूर्वक पालन करना होता है। श्रील रूप गोस्वामी ने ऐसे चौंसठ (६४) नियामक तत्त्वों की सूची प्रदान की है, उनमें से पाँच अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माने गये हैं:–

- विग्रह सेवा
- श्रीमद्भागवतम् का श्रवण
- भगवद्भक्तों का संग
- पवित्र नाम का जप एवं
- पवित्र धाम में निवास (अथवा तुलसीपूजा)

१. जप

- भक्त के जीवन में पवित्र नाम का जप सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य है। कीर्तन तथा जप यह सभी पूर्व महान् आचार्यों द्वारा प्रदत्त अंतःकरण के शुद्धिकरण के लिए अत्यन्त आवश्यक प्रक्रिया है। दीक्षा के समय शिष्य द्वारा गुरु के समक्ष की गई सबसे पहली प्रतिज्ञा है। अतः नियमित रूप से हरे कृष्ण महामंत्र की कम से कम सोलह माला जप करना एक प्रामाणिक शिष्य का प्रथम कर्तव्य है।
- श्रील प्रभुपाद कहते हैं कि, ''हमारी निन्यानवे प्रतिशत आध्यात्मिक प्रगति पवित्र नाम के जप पर निर्भर है।'' इस प्रकार जो भक्त प्रामाणिकतापूर्वक नियमित रूप से, अपराधशून्य होकर पवित्र नाम का जप करेगा वह कृष्णभावना में तुरन्त प्रगति करेगा।

–जप अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य:-

जब हम स्वयं को किसी महत्त्वपूर्ण कार्य में संलग्न करते हैं, तब हम केवल उस कार्य के लिए कुछ समय निकाल कर रखते हैं। उसी प्रकार प्रत्येक भक्त को दिन का कोई निर्धारित समय केवल जप के लिए आरक्षित रखना चाहिए और उस समय प्रत्येक कार्य त्यागकर केवल जप करने का प्रयास करना चाहिए। जप करते समय अन्य कोई कार्य न करें। उदाहरणार्थ सोलह माला जप करते समय कोई भी समाचार पत्र न पढ़े। किसी से बातचीत न करें, उस संबंध में कीर्तन भी न सुने। जप एक ऐसा कार्य है जिस पर अखंडित एकाग्रचित्त ध्यान केंद्रित करना आवश्यक है।

- पवित्र नाम के जप के समय टेलिफोन पर बातचीत न करें। टेलिफोन करने वाले के लिए नम्रतापूर्वक संदेश देने के लिए कहवा कर रखें अथवा बाद में संपर्क करने के लिए कहलवायें।
- जिस समय हम पवित्र नाम का जप कर रहे होते हैं उस समय हम सीधे श्रीकृष्ण के संपर्क में होते हैं, क्योंकि श्रीकृष्ण अपने नाम से अभिन्न हैं। सम्पूर्ण सृष्टि के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति भगवान् श्रीकृष्ण अपने नाम के रूप में प्रत्यक्ष हमारे समक्ष आते हैं इसलिए भगवान् से इस पवित्र 'मिलन' के बीच में किसी भी प्रकार की बाधा न आने दें।(इच्छा कीजिए–जहाँ चाह, वहाँ राह–है ही।)

–महामंत्र के अर्थ पर करने योग्य ध्यान

महामंत्र की ध्वनि दिव्य एवं अलौकिक होने के कारण हमें इसका अर्थ समझ में आये अथवा न आये फिर भी वह अपना प्रभाव दिखाती ही है। फिर भी हमें यह समझ लेना चाहिए कि महामंत्र का जप करते समय वास्तव में हम क्या प्रार्थना कर रहे हैं। श्रील प्रभुपाद समझाते हुए कहते हैं कि, "हरे कृष्ण महामंत्र का अर्थ स्वंयं को भगवान् श्री श्रीराधा-कृष्ण की प्रेममयी सेवा में संलग्न कर ने हेतु उनसे विनम्र विनती है।" "हरे कृष्ण" का अर्थ है, "हे हरे! हे श्रीमती राधारानी, हे सर्वाकर्षक श्रीकृष्ण! मुझे अपनी सेवा में संलग्न कर लीजिए, जिससे मैं माया की सेवा में मुक्त हो सकूँ।"

–भक्तियुक्त मनःस्थिति

हरे कृष्ण महामंत्र एक प्रार्थना है, हमें मंत्र का अच्छी तरह अर्थ समझकर भक्तिपूर्वक मन से प्रार्थना करनी चाहिए। हमारी प्रार्थना इस प्रकार होनी चाहिए जैसे कोई खोया हुआ अनाथ बालक अपनी माँ के लिए करुण पुकार कर रहा हो। हमारी प्रवृत्ति असहाय भाव में पूरी तरह भगवान् श्रीकृष्ण पर अवलंबित होनी चाहिए।

–भौतिक प्रलोभन

अपने भक्तिमार्ग में आगे जाने के लिए हमें प्रलोभन मुक्त होकर बाधाओं को लांघकर श्रीकृष्ण की शुद्ध भक्तिमय सेवा अर्पण करने का ध्येय साधने के लिए प्रशिक्षित किया जाता है, इसलिए जप के माध्यम से इंद्रियतृप्ति के लिए किसी भी भौतिक लाभ की ओर हमें नहीं देखना चाहिए। भगवान् से हमारी एक विशुद्ध माँग होनी चाहिए कि वे हमें उनकी सेवा तथा उनके नामों का सतत स्मरण करने का अवसर एवं सामर्थ्य दें। श्रील प्रभुपाद कहते हैं कि हमें श्रीकृष्ण से निम्नलिखित प्रार्थना करनी चाहिए– 'हे भगवान् श्रीकृष्ण, मुझे आपका विस्मरण न हो, यदि आप मुझे नरक में भेजते हो तब भी मुझे कोई कष्ट नहीं होगा, किन्तु मैं सदैव हरे कृष्ण महामंत्र का स्मरण करता रहूँ।"

—नम्रता

श्रीचैतन्य महाप्रभु ने अपनी शिक्षाष्टक प्रार्थना में कहा है– 'जब तक कोई घास के तिनके से भी अधिक विनम्र नहीं होता है तब तक वह हरे कृष्ण महामंत्र का सतत कीर्तन नहीं कर सकता है। विन्रमता स्वाभाविक रूप से तथा जैसे-जैसे भक्ति में हमारी प्रगति होती है वैसे-वैसे आती रहती है, इसलिए सभी को व्यवहार में तथा अपने मार्ग में सावधानीपूर्वक रहने का प्रयत्न करना चाहिए; विशेष रूप से भक्तों के संबंध सभी को मिथ्या अहंकार से स्वयं को बचा कर् रखना चाहिए। जिस समय भी यह मिथ्या अहंकार अपना सिर उठाये, एक क्षण का विलंब न करते हुए तुरन्त उसे नियंत्रित करें, क्योंकि मिथ्या अहंकार तथा पवित्र नाम एक साथ नहीं हो सकते।

> श्रील प्रभुपाद कहते हैं कि हमें श्रीकृष्णं को यह प्रार्थना अर्पित करनी चाहिए, '' हे भगवान् श्रीकृष्ण, मुझे कभी भी आपका विस्मरण न हो, मुझे नरक जाने का भी भय नहीं है किन्तु मैं सदैव हरे कृष्ण महामंत्र का स्मरण करता रहूँ।''

—तीव्र इच्छा

तीव्र इच्छा हमारे आध्यात्मिक जीवन की नींव है। हमारी प्रबल इच्छा और पवित्र नाम जप करने की हमारी उत्कण्ठा श्रीकृष्ण को अधिक आनन्दित करती है और वही अच्छे जप की मूलभूत आवश्यकता है।

—ध्यानपूर्वक श्रवण

हमारा अच्छा जप श्रवण के स्तर पर ही अवलंबित है, अतः ध्यानपूर्वक श्रवण अच्छे जप का एक प्रमुख अंग है। श्रील प्रभुपाद कहते हैं कि, ''सम्पूर्ण रूप से मंत्र की ध्वनि पर अपना ध्यान केंद्रित करो, प्रत्येक नाम अलग-अलग स्पष्ट उच्चारण करो और जल्दबाजी में जप समाप्त करने के लिए चिंतित न होओ। फिर से जप करते समय प्रत्येक शब्द को ध्यानपूर्वक सुनने का प्रयत्न करो।'' ध्यानपूर्वक श्रवण के बिना हमारा जप केवल यांत्रिक एवं रूचिहीन हो जायेगा।

—नाम में दृढ़ विश्वास

''सभी को भगवान् के पवित्र नाम का जप पूरी श्रद्धा से, उत्साह तथा श्रीचैतन्य महाप्रभु के वचनों पर दृढ़विश्वास रखकर करना चाहिए। जो कोई भगवान् के पवित्र नामों का जप करता है, वह धीरे-धीरे आध्यात्मिक नियमों के सर्वोच्च पद पर पहुँच जाता है।'' –श्रील प्रभुपाद

–योग्य वातावरण

प्रत्येक व्यक्ति को अच्छे जप के अनुकूल वातावरण का चयन करना चाहिए। मुंबई जैसे शहर में ऐसे शान्त स्थान का चयन करें जहाँ जप में कोई व्यवधान न आये। उदाहरण के लिए घर की गैलरी में बैठकर जप करना और उसी समय सड़क पर हो रही भीड़ की ओर ध्यान देना अच्छे जप का चिह्न नहीं है।

– कई भक्तों को कार्यालय में अपनी नौकरी पर जाने के लिए यात्रा करनी पड़ती है। इस दौरान वे जप कर सकते हैं; परन्तु इस जप को अतिरिक्त जप समझकर करना चाहिए तथा निर्धारित सोलह माला जप की नियमित संख्या में उसकी गणना नहीं करनी चाहिए, क्योंकि इस जप का स्तर अच्छा नहीं होता है।

–शरीर की मुद्रा

यदि कोई सक्षम है तो बैठकर जप करना अत्यन्त उत्तम है। सुविधानुसार सुखासन (पालथी) अथवा पद्मासन में बैठें एवं पीठ को सीधा रखें। दीवार का सहारा लेना, पीठ झुकाकर बैठना, हाथ की कोहनी को घुटनों पर या गोद में टिकाकर बैठना भी टालें, क्योंकि वह स्थिति नींद को तुरन्त निमंत्रण देती है। सबसे खराब स्थिति है कुर्सी पर पैर फैलाकर बैठना अथवा बिस्तर पर अस्तव्यस्त बैठना जो कि नींद को तुरन्त आमंत्रित करती है।

– यदि किसी को अधिक नींद आ रही है तथा मन विशेष रूप से अशान्त हो रहा है तो खड़े रहकर तथा चलते हुए जप करना किसी भी समय ठीक है। सारस्वरूप शरीर तो स्वस्थ है परन्तु मन चंचल तथा यदाकदा निष्क्रिय है।

– खड़े होकर जप करते समय दीवार का सहारा लेने से बचें। कदाचित्, उससे भी नींद आ सकती है। बद्धावस्था में मन हमें श्रीकृष्ण के मधुर नाम से वंचित करने वाले कार्यों में फँसाने के लिए नाना प्रकार की युक्ति ढूँढता रहता है।

– कई भक्त चहलकदमी करते हुए जप करना पसंद करते हैं। यद्यपि आचार्यों ने इसे मान्यता दी है फिर भी यहाँ-वहाँ न देखते हुए सावधानीपूर्वक रहना चाहिए तथा किसी भी कारण अपना ध्यान विचलित नहीं होने देना चाहिए। एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि सभी को अपना मस्तक थोड़ा-सा नीचे झुकाकर चलने से मन केन्द्रित करने में सहायता मिलती है।

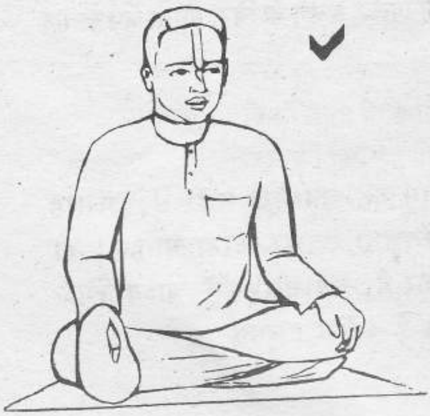

–दक्षता (निपुणता)

चलते हुए जप करने के लिए व्यक्ति को अपने मन को सतर्क रखने में निपुण होना चाहिए। बैठकर जप करते समय यदि नींद आ रही है तो तुरन्त उठना अथवा चलना चाहिए। जब भी मन यहाँ-वहाँ भटकें तुरन्त उसे पवित्र नाम का श्रवण करने के लिए बलपूर्वक नियंत्रित करना चाहिए।

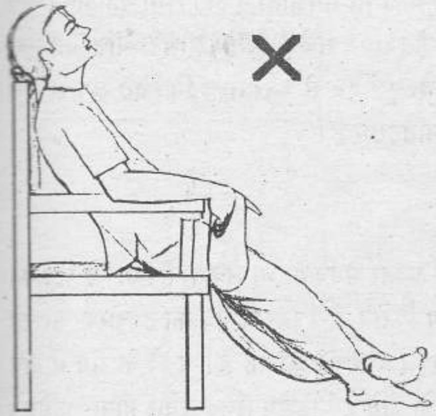

–जप कोई शर्त नहीं है

कभी-कभी समय के मोह में जप शीघ्रता से किया जाता है, जिससे सोलह माला जल्दी से पूरी हो जायें। भक्ति के प्रतिकूल होने के कारण इस मानसिकता से बचें। स्पष्ट व ध्यानपूर्वक जप पर सदा बल देना चाहिए। जप एक व्यक्तिगत कार्य है, इसलिए प्रत्येक भक्त को अन्यों की नकल न करते हुए स्वयं के जप में लगने वाले समय को निर्धारित करना चाहिए। उदाहरणार्थ, कुछ भक्तों के लिए डेढ़ घण्टे पर्याप्त हैं किन्तु कुछ के लिए दो घण्टे भी कम हैं। महामंत्र के शब्दों को बीच-बीच में छोड़ते हुए कभी भी जप न करें। जप के अच्छे स्तर के बारे में कभी भी कोई समझौता न हो।

–सदैव चर्चा करें

जप महत्त्वपूर्ण है, अतः भक्तों को सदा इस विषय पर चर्चा करनी चाहिए, इसके महत्त्व को परिलक्षित (विषय) करना व एक-दूसरे की अनुभूति अथवा अनुभव में सम्मिलित होना चाहिए।

–भक्तों के संग में जप सर्वोत्तम जप है।

– यद्यपि जप एक व्यक्तिगत कार्य है फिर भी यह सलाह दी जाती है कि हमें भक्तों के संग में जप करना चाहिए। जब हम अकेले जप करते हैं उस समय थोड़ा असावधान अथवा सुस्त होने की संभावना रहती है; परन्तु भक्तों के संग में हम सदैव किसी की देखरेख में रहते हैं तथा कोई न कोई हमारे दुर्लक्षित होने की ओर ध्यान रखे होता है। जिस समय भक्त एक-साथ जप करते हैं उस समय एक शक्तिशाली दिव्य ध्वनिकंपन होता है, ऐसे अद्भुत वातावरण में जप करना आनन्दपूर्ण होता है।

– इसलिए जब-जब संभव हो तब-तब भक्तों को मंदिर के प्रातःकालीन जप में उपस्थित रहना चाहिए। घर में जप करने वाले भक्तों को जितने दिन संभव हो उतने दिन बारी-बारी से एक-दूसरे के घर एकत्रित होकर एक-साथ जप करना चाहिए।

–प्रातःकालीन जप

जप प्रातःकाल शीघ्र करें, विशेष रूप से ब्रह्ममूहर्त में। यदि यह समय संभव न हो तो उसके बाद जितना शीघ्र हो सके उतना करने का प्रयास करें। प्रातः शीघ्र उठना सभी

भक्तों के लिए अनिवार्य है तथा इस संबंध में कोई भी समझौता न हो। सभी को अपने जप के लिए एक निश्चित समय रखना अपेक्षित है। समय संबंधी नियम साधना भक्ति का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। सभी को काम पर जाने के पूर्व १० से १२ माला निश्चित रूप से पूर्ण करनी चाहिए, इससे अधिक हो सके तो अतिउत्तम है।

–उच्च स्वर में जप

जप उच्च स्वर या धीमे स्वर, दोनों प्रकार से किया जा सकता है। अच्छे जप का अर्थ यह नहीं कि जप जोर-जोर से करें। हम कितने ऊँचे स्वर में मंत्र का उच्चारण कर रहे हैं, उससे महत्त्वपूर्ण है कि हम कितने ध्यानपूर्वक श्रवण कर रहे हैं। भक्तों के संग में जप करते समय उनका ध्यान विचलित न हो इसके प्रति हमें विशेष संवेदनशील होना चाहिए।

–पवित्र नाम अथवा लीला

– एक प्रश्न भक्तों द्वारा सदैव पूछा जाता है कि क्या जप करते समय कृष्णलीला के विषय में चिन्तन कर सकते हैं? इस संबंध में हमें यह देखना है कि श्रील प्रभुपाद क्या कहते हैं?

''श्रीकृष्ण के नामों का श्रवण तथा कृष्णलीला इन दोनों में कोई भी भेद है, परन्तु यदि पहले श्रवण की प्रक्रिया हो तो बाद में कृष्णलीला, रूप और गुण इत्यादि अपने-आप प्रकट हो जाते हैं।''

एक अन्य स्थान पर श्रील प्रभुपाद कहते हैं, ''सामान्य रूप से पद्धति ऐसी है कि केवल नाम का उच्चारण व श्रवण करें, परन्तु यदि श्रीकृष्ण की लीलाएँ स्वतः ही मन में आती हैं तो वह अतिउत्तम है। कृत्रिम रूप से उनका स्मरण करना ठीक नहीं है।''

अधिक जानकारी हेतु कृपया परिशिष्ट ७ देखें। पृष्ठ क्र.७०

–नामापराध

– सभी को पवित्र नाम के प्रति अपराध टालना चाहिए। (परिशिष्ट ७ देखें) श्रील प्रभुपाद कहते हैं कि 'अच्छे' जप का अर्थ 'निरपराध रूप से जप करना' है।

इस सम्बन्ध में श्रील प्रभुपाद कहते हैं–

''हम श्रीकृष्ण के विषय में श्रवण करने एवं लीला स्मरण में भेद नहीं कर सकते। परन्तु हमारी विधि श्रवण की है और ऐसा करने पर श्रीकृष्ण की लीलायें, रूप, गुण इत्यादि स्वतः ही मन में स्फुरित हो जायेंगे...।''

अधिक जानकारी हेतु कृपया परिशिष्ट ८ देखें। पृष्ठ क्र.६७

– हरे कृष्ण महामंत्र का गायन करने के पहले किसी को भी पंचतत्त्व मंत्र का उच्चारण भूलना नहीं चाहिए। (यदि चाहें तो गुरु प्रणाम मंत्र का उच्चारण भी किया जा सकता है।)

२. नियम

सभी को चार नियमों का कठोरता से पालन करना चाहिए।

१. माँस सेवन वर्ज्य है। इसमें मछली, अण्डे और प्याज, लहसुन तथा कुकुरमुत्ता भी आते हैं।

२. नशापान तथा उत्तेजक पदार्थों यथा शराब, चाय, कॉफी, पान, तंबाकू, सुपारी, पान मसाला इत्यादि का सेवन भी वर्जित है।

३. अवैध स्त्री-पुरुष संग (व्याभिचार) वर्ज्य। (अन्य स्त्री अथवा पुरुष संग वर्ज्य, प्रजनन के अतिक्ति विवाह के अंतर्गत संग भी वर्ज्य)

४. जुआ वर्ज्य (सट्टा, लॉटरी, मटका इत्यादि)

– भक्तों को निम्नलिखित बातें टालनी चाहिए।

१. व्यावसायिक सिनेमा देखना।

२. दूरदर्शन, भक्तिरहित विडियो देखना।

३. उपन्यास पढ़ना तथा अन्य भक्तिरहित लेख पढ़ना।

४. फिल्म, खेल, राजनीति, स्त्री-पुरुष संबंध आदि विषयों पर आधारित मासिक पुस्तकें केवल हमारी भावना को दूषित करती हैं तथा चार नियमों के व्यवहारिक पालन में आवश्यक एकाग्रता एवं दृढ़ता को खण्डित करती है।

३. सत्संग

– सभी को नियमित रूप से भक्तों का संग करना आवश्यक है। नियमित शब्द का अर्थ है, जितना अधिक हो सके उतना अधिक। अपनी परिस्थिति के अनुसार प्रत्येक को यथासंभव संग करना चाहिए।

– जैसे-जैसे कोई प्रामाणिक भक्तों का संग करता है वैसे-वैसे वह कृष्णभावना में शीघ्रता से प्रगति करता जाता है।

– भक्तों का केवल शारीरिक रूप से एकत्रित होना सत्संग नहीं है, अपितु सत्संग का वास्तविक महत्त्व यह है कि उन्होंने एकत्रित होकर क्या किया। संकीर्तन, कृष्णकथा तथा सेवा सत्संग का मूल आधार है।

– सत्संग में गंभीरता से श्रवण करना चाहिए, केवल बोलने के लिए आतुर नहीं रहना चाहिए।

- भक्तों का संग हमें प्राप्त एक अनमोल भेंट है, इसके बिना हमारा जीवन शुष्क एवं निरर्थक है। भक्तों का नियमित संग न करने से कृष्णभावना से निश्चित् ही पतन होता है।
- संग व्यक्तिगत (वपु अर्थात् गुरु एवं वैष्णवों की शारीरिक उपस्थिति) हो अथवा शाब्दिक (वाणी अर्थात् गुरु अथवा वैष्णवों के उपदेश) दोनों ही महत्त्वपूर्ण है।
- सत्संग उसी समय अर्थपूर्ण होता है जब कोई व्यक्ति ध्यानपूर्वक श्रवण किये गये उपदेशों को अपने जीवन में व्यवहारिक दृष्टि से उतारने का गंभीर प्रयत्न करता है।
- सलाहकार (काऊंसलर) स्वीकार करें। मित्र अथवा मार्गदर्शक सलाहकारों के लिए किसी वरिष्ठ वैष्णव अथवा मंदिर अध्यक्ष से सम्पर्क करें।

४. असत्संग त्याग

जैसे आध्यात्मिक जीवन गतिशील रखने के लिए सत्संग की आवश्यकता है, वैसे ही असत्संग से दूर रहना भी आवश्यक है।

- प्रत्येक भक्त को अभक्तों का कम से कम संग करना चाहिए क्योंकि अभक्तों का संग हमारी चेतना को दूषित करता है।
- निम्नलिखित परिस्थितियों में हमें अभक्तों का संग कम से कम समय तक करना चाहिए।

क) व्यवसाय अथवा व्यापार के कर्तव्यों की पूर्ति के लिए।

ख) मूलभूत सामाजिक कर्तव्यों के निर्वाह के लिए। उदाहरण–निकट के संबंधी, पड़ोसी, मित्र इत्यादि।

- श्रीचैतन्य महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी को यह शिक्षा दी थी कि, ''भक्त के व्यवहार का सारांश यह है कि वह अभक्तों के संग से सदैव दूर रहता है।''

दो प्रकार के असत्संगी

क) सर्वप्रथम ऐसे व्यक्ति से अपवित्र संग टालें जो स्त्री (विपरीत लिंग के व्यक्ति) तथा भौतिक ऐश्वर्य से अत्यन्त आसक्त है। (भागवत में कहा गया है कि, ''ऐसे व्यक्ति के संग से भक्त अपने सभी सद्‌गुण जैसे, सत्य, स्वच्छता, दया, बुद्धि, गंभीरता व सम्पूर्ण वैभव को खो देता है। ऐसे अपवित्र संग से मनुष्य

☞ भागवत में ऐसा कहा गया है कि ऐसे संग से सत्यता, स्वच्छता, दया, बुद्धि, गंभीरता एवं प्राप्त सम्पूर्ण वैभव नष्ट हो जाता है। दु:संग से अधिक पतित अवस्था अन्य कोई नही है।

का जितना पतन होता है उतना अन्य किसी कारण से नहीं होता है।)

ख) जो कृष्ण भक्त नहीं हैं उनके संग का त्याग करें। (श्रीचैतन्य महाप्रभु शास्त्रों का आधार लेकर कहते हैं कि ऐसे व्यक्ति के संग की अपेक्षा स्वयं को जलती अग्नि के पिंजरे में बंद कर लेना अधिक श्रेष्ठ है।)

५. पुस्तकों का अध्ययन

भक्तों को श्रील प्रभुपाद की पुस्तकें अवश्य पढ़नी चाहिए। उदाहरण के लिए, भगवद्गीता, श्रीमद्भागवतम् इत्यादि। भक्त अपना पठन किसी छोटी पुस्तक जैसे उपदेशामृत, पूर्ण प्रश्न पूर्ण उत्तर आदि से भी आरम्भ कर सकते हैं।

– अन्य ग्रंथों के पठन का त्याग करना चाहिए।

– पठन गंभीरतापूर्वक, ध्यानपूर्वक तथा नियमपूर्वक करना चाहिए। जैसे उपन्यास पढ़ा जाता है ग्रंथों को वैसे नहीं पढ़ना चाहिए। पढ़ते समय नोट बनायें तथा महत्त्वपूर्ण श्लोक याद कर लें।

– अपनी बुद्धि तीक्ष्ण करने के लिए पठन आवश्यक है। पठन हमारी श्रद्धा, विश्वास एवं निश्चय को दृढ़ बनाता है।

– प्रचारक के लिए शास्त्रों का अध्ययन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

– 'पठन' केवल पठन न होकर 'श्रवण' भी है।

– अच्छे प्रवचनों की कैसेट लेने का अवसर सभी को लेना चाहिए, जो मंदिर की लायब्रेरी में उपलब्ध है।

६. सेवा

गुरु के इच्छित कार्य में सहभागी होने के लिए प्रत्येक भक्त को स्वयं को किसी विशेष सेवा में संलग्न कर लेना चाहिए। इसके लिए व्यक्ति अपने सलाहकार (काउंसलर) से विचार-विमर्श कर सकता है।

– अनेक प्रकार की सेवाएँ हैं जो कि मंदिर में तथा मंदिर द्वारा होने वाले कार्यक्रमों के माध्यम से की जाती हैं।

७. अर्चाविग्रह सेवा

अपने घर में अर्चाविग्रहों की सेवा करना गृहस्थ के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। विग्रह लकड़ी, मिट्टी, संगमरमर अथवा धातु से बनाये हुए हो सकते हैं। विग्रह स्थापन के लिए आवश्यक वेदी की व्यवस्था अपनी क्षमतानुसार करें।

– विग्रहों के लिए आवश्यक व्यवस्था, नियम एवं आवश्यक सामग्री के विषय में भक्तों की मदद ले सकते हैं।

– घर में प्रमुख विग्रहों के रूप में श्रीगौर-निताई की सेवा करना अत्यन्त लाभदायक है। श्री श्रीराधा-कृष्ण के विग्रहों की सेवा करने के लिए गुरु महाराज अथवा वरिष्ठ

भक्तों की अनुमति लेना आवश्यक है।

- योग्य वेदी का अर्थ है–गुरु, परम गुरु, गौर-निताई, पंचतत्त्व तथा श्रीराधा-कृष्ण।
- इस प्रकार की कोई अपेक्षा नहीं की जाती है कि मंदिर में स्थापित विग्रहों की सेवा के अनुसार ही घर के विग्रहों की भी पूजा सेवा की जाये। फिर भी सभी को अपनी सुविधा तथा परिस्थिति के अनुसार विग्रह सेवा की ओर ध्यान देना चाहिए।
- मंदिर में आना प्रथम आवश्यकता है, ऐसे समय घर के विग्रहों को विश्राम देना चाहिए।
- कम से कम निम्नलिखित बातों का पालन करना चाहिए–
  - घर में पकाये गये प्रत्येक अन्न पदार्थ को विग्रहों को अर्पित करें।
  - ऐसा बताया गया है कि कम से कम दिन में दो बार आरती करनी चाहिए।(प्रातःकाल तथा सायंकाल कीर्तन के साथ)
  - आरती से पहले भोग अर्पित करें।
  - आरती करते समय बिल्कुल बात या मजाक न करें और न ही पीछे मुड़कर देखें।
- घर के लोग जब भी कहीं बाहर (अधिक समय के लिए) जायें तो विग्रहों को विश्राम देना चाहिए।
- बच्चों को भी श्रीविग्रह सेवा करने में संलग्न करना चाहिए।
- विग्रहों की देखभाल करना, उनके लिए भोग बनाना, उन्हें भोग अर्पित करना, वस्त्र एवं आभूषण बनाना इत्यादि अत्यन्त सुन्दर सेवाएँ हैं, इन्हें करने से कार्यों की शुद्धि होती है तथा परिवार के सभी लोग इसमें सहभागी हो सकते हैं।
- आरती के नियमों के लिए परिशिष्ट ८ देखें।

तुलसी देवी

जिन्हें संभव हो उन्हें घर में उस स्थान पर तुलसी रखनी चाहिए जहाँ सूर्यप्रकाश आये। पानी डालने आदि जैसी योग्य बातों को सदैव ध्यान में रखें।

- तुलसी के पत्ते भगवान् को भोग अर्पित करने तथा उनके चरणकमलों में लगाने के लिए प्रयोग किये जाते हैं।
- तुलसी पत्ते गुरु व श्रीमती राधारानी के चरणों में तथा गुरु महाराज के भोग में प्रयोग न करें। श्रीमती राधारानी के हाथों में तुलसी दे सकते हैं।
- भगवान् श्रीकृष्ण को तुलसी अत्यन्त प्रिय है अतः वे उनके बिना भोग स्वीकार नहीं करते हैं।
- यदि संभव हो तो प्रतिदिन तुलसी महारानी की भी पूजा करें।

भगवान् के लिए वस्त्र बनाते समय तथा फूलों का हार बनाते समय विशेष

ध्यान देना आवश्यक है।

- सुईं में धागा डालते समय थूक का प्रयोग कदापि न करें।
- फूल, कपड़ा इत्यादि भूमि पर न रखकर किसी कपड़े पर रखें।
- केवल सुन्दर सुगंधित तथा शुद्ध (सुगंध न ली गई तथा प्रयोग न किया गया) फूल ही भगवान् के लिए प्रयोग करें।

८. तपस्या

भक्तों की साधना में कुछ मूलभूत तपस्याओं का भी समावेश होना ही चाहिए, जैसे प्रातः जल्दी उठना, ठंडे पानी से स्नान करना, खान-पान में नियंत्रण, सहवास से संबंधित नियम, कम से कम शारीरिक सुख, धन संचय आदि।

- भक्तों के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण तपस्या है निश्चित् दिन को उपवास करना, जैसे एकादशी, महत्त्वपूर्ण उत्सव एवं आचार्यों के आविर्भाव तथा तिरोभाव दिवस इत्यादि।

एकादशी

- एकादशी महीने में दो बार आती है। यह तपस्या का दिन है तथा वैष्णव इसका पालन करते हैं।
- केवल उपवास करना मूलभूत तत्त्व न होकर इस दिन श्रीकृष्ण के प्रति श्रद्धा व प्रेम बढ़ाना है, अतः सभी वैष्णवों को एकादशी का उपवास करना ही चाहिए।
- एकादशी के दिन उपवास करने का वास्तविक कारण शरीर की आवश्यकताओं को कम से कम करना तथा अपना समय भक्तिसेवा में लगाना है।
- उपवास का पारण दूसरे दिन (द्वादशी) दिनदर्शिका में बताये गये समय के अनुसार करें।
- एकादशी के दिन अधिक से अधिक जप करें तथा कृष्णलीला स्मरण करने का प्रयत्न करें।
- एकादशी के दिन कठोरता से अनाज व दालों का सेवन वर्जित करें।
- यदि कोई एकादशी के दिन पूरी तरह से खान-पान वर्जित (निर्जल) करके भी अपने नियत कर्तव्यों एवं कर्मों का पालन कर सकता है तो वह भक्त निर्जल एकादशी कर सकता है।
- क्योंकि हमारा प्रचार का कार्य है तथा निर्जल (सम्पूर्ण खान-पान रहित) रहना हमारी सेवा तथा प्रचार कार्य में बाधा डाल सकता है। यदि ऐसा है तो निर्जल उपवास न करें एवं उपवास का थोड़ा प्रसाद तथा पानी ग्रहण करके सेवा करें।
- यदि कोई एकादशी के दिन उपवास करना भूल जाता है अथवा तोड़ देता है तो उसे दूसरे दिन अर्थात् द्वादशी को उपवास करके त्रयोदशी को अपना उपवास छोड़ना चाहिए।
- सभी को निर्जल एकादशी (भीम एकादशी) के दिन निर्जल ही करना चाहिए।

चातुर्मास

परंपरानुसार वर्षा के चार माह साधु एक स्थान पर ही रहते हैं तथा प्रवास नहीं करते हैं।

–चार महीने की निम्नलिखित विहित तपस्या है।

महीना	वर्जित अन्न पदार्थ
श्रावण	हरे पत्तों की सब्जियाँ
भाद्रपद	दही
आश्विन	दूध
कार्तिक	उड़द की दाल

९. अनुकूल तथा प्रतिकूल नियम

श्रील रूप गोस्वामी भक्तिरसामृतसिंधु में कहते हैं कि, "जब कोई नीचे दी गई छः बातों में स्वयं को संलग्न करता है तब उसकी भक्ति सेवा अवरुद्ध हो जाती है।"

छः प्रतिकूल नियम

१. अत्याहार–आवश्यकता से अधिक खाना अथवा आवश्यकता से अधिक धन संचय करना

२. प्रयास–जो भौतिक (नश्वर) वस्तु मिलनी अत्यन्त मुश्किल है उसके लिए कठिन प्रयत्न करना।

३. प्रजल्प–भौतिक बातों के विषय में व्यर्थ ही बोलते रहना।

४. नियमाग्रह/ नियम-अग्रह–आध्यात्मिक नियम व आचारों के उद्देश्य को समझे बिना उनका पालन करना अथवा शास्त्रों में दी गई आज्ञाओं का पालन न करना तथा स्वतंत्रतापूर्वक एवं मन को जैसा अच्छा लगे वैसे काम करना।

५. जनसंग–ऐसे व्यक्ति का संग करना जो कि भौतिकता में आसक्त हैं तथा कृष्णभावना में जिसकी रुचि नहीं है।

६. लौल्य–भौतिक उपलब्धियों के संबंध में लालची होना।

भक्ति के छः अनुकूल तत्त्व

१. उत्साह–उत्साही होना

२. निश्चय–आत्मविश्वास के साथ प्रयत्न

३. धैर्य–शान्त रहना

४. तत्कर्म-प्रवर्तन–नियमों के अनुसार आचरण (जैसे श्रवणं कीर्तनं विष्णु स्मरणं–गायन तथा श्रीकृष्ण का चिंतन)

५. संगत्याग–असत् संग त्याग (अभक्तों के संग को त्यागना)
६. सतोवृत्ति–पूर्ववर्ती आचार्यों का अनुकरण
ये छः नियम बिना किसी संशय के भक्ति सेवा के लिए अनुकूल हैं।

१०. ब्राह्मण

– ब्राह्मण जीवन का अर्थ है स्वच्छता का जीवन।
– ब्राह्मण ने यदि सवेरे गायत्री न की हो तो उसे दोपहर में दो बार गायत्री करनी चाहिए तथा दोपहर को भी न की हो तो सायंकाल तीन बार एकसाथ गायत्री मंत्र का जप करना चाहिए। (ऐसा करना अत्यन्त आवश्यक नहीं है और न ही कोई ऐसा कठोर नियम है, यह व्यक्तिगत रूप से निर्भर करता है कि हम ऐसा करें या न करें।)
– जिन्होंने ब्राह्मण दीक्षा ली है उन्हें बिना भूले तीनों समय गायत्री करनी चाहिए।
– विग्रह सेवा के नियमों का पालन तथा अभ्यास करते रहना चाहिए।

११. समय का महत्त्व

कृपया याद रखें:
– मनुष्य जीवन का प्रत्येक क्षण अनमोल है, अतः एक भी क्षण व्यर्थ न जाने दें।
– हमें प्रत्येक क्षण यह देखने का प्रयास करना चाहिए कि क्या हमने स्वयं को जितना अधिक से अधिक संभव हो सका भगवान् की भक्तिमय सेवा में संलग्न किया है अथवा नहीं?
– हमें जो समय रूपी महान् वरदान मिला है उसे व्यर्थ नहीं गँवाना चाहिए।

भाग ६

१. यात्रा

१. पवित्र स्थलों के दर्शन के लिए आयोजित की गई यात्रा वैष्णवों के जीवन की एक अतिशय महत्त्वपूर्ण एवं सदा स्मृति में रहने वाला उत्साही अवसर है।

२. व्यक्ति को उचित तैयारी करते हुए अपनी पारिवारिक एवं कार्यलय सम्बन्धी जिम्मेदारियों की पूर्व व्यवस्था कर लेनी चाहिए, जिससे यात्रा के दौरान चिंता उत्पन्न न हो, जिससे व्यक्ति अपना सम्पूर्ण मन भगवान् के पवित्र नाम एवं कथा में संलग्न कर सके।

३. इस प्रकार की यात्रा आध्यात्मिक शुद्धिकरण के लिए होती हैं इसलिए होने के कारण वहाँ व्यर्थ का वार्तालाप एवं निम्न दर्जे का व्यवहार न करें। वहाँ केवल कृष्णकथा एवं पवित्र नाम का कीर्तन करें।

४. भक्त स्वच्छंदतापूर्वक एवं प्रेमपूर्वक एक-दूसरे का संग करें। पहले के परिचय के आधार पर गुट (दल) बनाने की प्रवृत्ति टालें।

५. भक्तों को यात्रा के लिए दिये गये शिष्टाचार एवं नियमों का इच्छापूर्वक पालन करें। यह न केवल यात्रा को संघटित करने के प्रयत्नों को सुलभ बनाता है अपितु एक अच्छे वातावरण का निर्माण भी करता है।

६. सभी को बग़ैर शिकायत किये अव्यवस्था एवं कष्ट सहन करने के लिए तैयार रहना चाहिए। प्रवासी वाहनों के विषय में यदि कोई सूचना हो तो उसे पूर्ण विंनम्रता से योग्य व्यक्ति का दें। अप्रिय टिप्पणी एवं शिकायत यात्रा का वातावरण बिगाड़ देती है।

७. कोई भी अंतिम समय में यात्रा में शामिल होने का प्रयत्न न करें। यात्रा के विषय में घोषणायें काफी पहले की होती है। सभी को अपने नाम एवं पैसा नियत तिथि से पहले दे देना चाहिए।

८. यात्रा के लिए कोई भी ऐसे किसी व्यक्ति के नाम की सिफारिश न करे, जो बिल्कुल ही नया है, अधिक प्रामाणिक नहीं है अथवा जो चार मूलभूत नियमों का पालन नहीं करता है।

९. सभी को पूरी यात्रा के दौरान भक्तों के संग में रहना चाहिए। कोई भी दूसरे स्थान जाने के लिए अपनी स्वतंत्र योजना न बनाये या दूसरी बातें न करें।

१०. सभी भक्तों को उच्च आध्यात्मिक वातारवरण बनाये रखने के लिए अपना योगदान देना चाहिए। केवल एक निरुत्साही एवं आलसी भक्त सम्पूर्ण यात्रा के वातावरण को बिगाड़ सकता है।

११. सभी को दूसरे की मदद एवं सेवा करने के लिए उत्सुक रहना चाहिए एवं इस प्रकार की सेवा मिलने पर सदा संतुष्ट रहना चाहिए।

१२. भक्त बाहर से अपने लिए विशेष अन्नपदार्थ न खरीदें। यात्रा का उद्देश्य एकत्र भोजन, प्रसाद, निवास अर्थात् एक कुटुंब के समान होना चाहिए।

१३. सभी को पवित्र धाम के विरुद्ध अपराध न करने में अत्यन्त सावधान होना चाहिए।

१४. यात्रा के दौरान भक्तों के साथ हमें अन्य इस्कॉन मंदिर में अथवा गौडीय मठ के मंदिर में जाने पर उस मंदिर के सामान्य नियमों एवं परंपराओं का ध्यानपूर्वक सम्मान करना चाहिए। उदाहरण स्वरूप इस्कॉन मंदिर में जाने के पश्चात् श्रील प्रभुपाद के नाम के अतिरिक्त अन्य गुरु के नाम का जयजयकार न करें। किसी भी प्रकार के संभावित वाद-विवाद को टालमा चाहिए।

अधिक जानकारी हेतु कृपया परिशिष्ट १०देखें। पृष्ठ क्र.७८

१५. धामवासियों से हमें मित्रता अथवा शत्रुता नहीं रखनी चाहिए। तटस्थ रहना ही उचित है।

रथयात्रा में सम्मिलित होने वाले भक्तों के लिए सूचना

(शोभायात्रा अथवा हरिनाम संकीर्तन में भी निम्नलिखित नियमों का पालन करें।)

अ) जनसामान्य के समक्ष कैसा आचरण करें?

१. कृपया यह ध्यान रखें कि हम अंतर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। हम जहाँ-जहाँ भी जायेंगे वहाँ-वहाँ लोगों का ध्यान हमारे आचरण एवं व्यवहार के ऊपर रहेगा, अतः हमें स्वयं के आचरण के प्रति सचेष्ट रहना चाहिए।

२. सदैव नम्र तथा दूसरों को सहयोग देने के लिए तत्पर रहें। यदि कोई हमें क्रोधित करने के लिए प्रेरित कर रहा हो तब भी हमें क्रोधित नहीं होना है। सबके सामने क्रोध प्रकट करना सबसे निम्न कोटि का या गलत प्रचार है।

३. भक्तों से अथवा अन्य लोगों से वाद-विवाद अथवा झगड़ा न करें। यदि मतभेद हो अथवा कोई विवादास्पद स्थिति हो तो सबकी उपस्थिति में वाद-विवाद न करके उसका हल शान्तिपूर्वक तथा संभव हो तो आपस में ही करने का प्रयास करें।

४. अन्य लोग भी कीर्तन व नृत्य करें इसलिए उन्हें उत्तेजित करके उनपर टिप्पणी एवं उनके साथ जबरदस्ती न करें।

५. प्रसाद तथा हार इधर-उधर न फेंके। जिन भक्तों को हार व प्रसाद वितरण की सेवा दी गई हो, उन्हें व्यक्तिगत रूप से सभी को उसका वितरण करना चाहिए।

६. सड़क पर चलते हुए अथवा खड़े रहकर खाना शिष्टाचार नहीं है। रथयात्रा के दौरान रास्ते की दुकानों से खाद्यपदार्थ खरीदना उचित नहीं है। फिर भी इस्कॉन के

शुभचिंतकों द्वारा रथयात्रा के दौरान दिए गये पानी-शर्बत आदि को आ एपूर्वक स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं है।

७. कृपया गलत व्यवहार, अत्यधिक मजाक, एक-दूसरों को धक्का, एक-दूसरे की चरणधूलि लेने के लिए स्पर्धा, इन सभी बातों का परित्याग करें। लोगों के बीच हमारा व्यवहार अत्यन्त सम्मानजनक होना चाहिए।

आ) सर्वसामान्य शिष्टाचार– (साधारण)

१. हमें पारंपरिक वेशभूषा पहननी चाहिए।

क) स्त्रियों के लिए साड़ी।

ख) पुरुषों के लिए धोती एवं कुर्ता तथा तिलक एवं कंठीमाला अनिवार्य है।

२. फैशनेबल टोपी तथा चश्मों का प्रयोग पूर्णतः प्रतिबंधित है।

३. सदैव दूसरों को प्राथमिकता दें; विशेष रूप से प्रसाद लेते समय।

४. अपना व्यवहार सदैव नम्र तथा आदरपूर्ण रखें।

५. स्त्री तथा पुरुषों के आपसी व्यवहार में उचित अंतर रखना चाहिए।

इ) पदयात्रा (नगर संकीर्तन)

१. पदयात्रा के समय हमें सदैव अनुशाषित रहना चाहिए। जहाँ आवश्यक हो वहाँ अनुशाषित ढ़ंग से पंक्ति लगायें।

– पदयात्रा के समय जहाँ आवश्यक हो, समय पर उपस्थित रहें।

– पदयात्रा के समय धैर्यपूर्ण व्यवहार करें तथा दूसरों की सुविधा का विचार करें।

– पदयात्रा के दौरान धक्का-मुक्की न करें तथा इस बात का ध्यान रखें कि आपका पैर दूसरों के पैर पर न पड़े। इसके अतिरिक्त इस बात का भी ध्यान रखें कि आपके कारण दूसरों को कोई कष्ट न हो।

– विशेष रूप से जिस स्थान पर शर्बत-पानी इत्यादि वितरित किया जाता हो वहाँ अनुशासन का पालन करें। धक्का-मुकी न करें। शान्ति तथा आदरपूर्वक पेय स्वीकार करें। पुरुषों एवं स्त्रियों के लिए अलग-अलग कतार बनायें, तथा दूसरों को प्रधानता दें। शर्बत पीने के पश्चात् प्लास्टिक के प्याले इत्यादि सड़क पर न डालकर कचरा पेटी में ही डालें।

२. कुछ भक्त पदयात्रा के समय आगें जायें तथा जहाँ शर्बत-पानी इत्यादि दिया जाता है वहाँ जाकर निम्नलिखित बातों की पुष्टि करें।

शर्बत इत्यादि भगवान् को योग्य विधि से अर्पित किया गया हो।

– शर्बत इत्यादि के वितरण के लिए एक की अपेक्षा अनेक टेबल हों।

– सभी भक्त एक साथ आने पर पुरुष तथा स्त्रियों के लिए अलग-अलग पंक्ति बनायें।

३. 'भगवद्गीता', 'भगवद्दर्शन' तथा अन्य ग्रंथों के वितरण करते समय भक्त लोगों से

उद्दण्डतापूर्वक व्यवहार न करके शान्ति तथा नम्रतापूर्वक व्यवहार करें।

४. पदयात्रा के समय कोई भी भक्त चंदा जमा न करे। रथ पर दो स्थान पर दान के लिए दानपेटी रखी जाती है।

५. माताओं को पदयात्रा के समय सौम्य नृत्य करना चाहिए। रथ खींचते समय तथा चलते समय उत्साहपूर्वक कीर्तन करना चाहिए।

६. समय-समय पर दी जाने वाली सूचनाओं का अच्छी तरह पालन करें।

७. पदयात्रा के दौरान तीन-चार भक्तों का एक साथ छोटा-सा समूह बनाकर गप्पें मारना, यहाँ-वहाँ भटकते रहना इत्यादि बातों का परित्याग करें।

८. रथयात्रा में सक्रिय रूप से भाग लें तथा सम्पूर्ण यात्रा में उत्साह बनायें रखें।

९. पदयात्रा में सम्मिलित भक्त रथ से योग्य अंतर पर रहें। कुछ विशेष कारणों से यदि रथ रुका हुआ हो तो रथ के सम्मुख स्थित पदयात्रियों को भी रुकना चाहिए।

१०. कुछ विशेष चौक पर रथ रोका जाता है। जिन स्थानीय लोगों को भगवान् जगन्नाथ के लिए फल, फूल, भोग इत्यादि अर्पण करना हो तो उन्हें अपने घर के पास के उस स्थान पर एकत्रित रहना चाहिए जहाँ रथ रुकने वाला हो।

११. रथयात्रा में यदि पशुओं का भी सहभाग हो (जैसे गाय, बैल, घोड़े इत्यादि) तो उन प्राणियों को छेड़ें अथवा परेशान न करें।

ई) कीर्तन

१. हमारा नृत्य आनन्द तथा भक्तिमय हो। जब कीर्तन का वेग बढ़े तो हमें भी और अधिक उत्साही होना चाहिए, परन्तु हमारे उत्साह से हमारी विशेष मर्यादा का उल्लंघन न हो इसका पूरा ध्यान रखें, अर्थात् हमारा नृत्य कर्मी लोगों के समान मस्तीपूर्वक न हो। दूसरों को भी उनके मन में जैसा आये वैसा नाचने से रोकना चाहिए।

२. कीर्तन में उत्साह से गायें एवं नृत्य करें।

३. जितना अधिक संभव हो सके पदयात्रा में कीर्तन तालबद्ध तथा मंदगति से करें तथा कुछ विशेष स्थानों पर ही कीर्तन का वेग बढ़ायें।

४. कौन, कब और कितने समय के लिए कीर्तन करेगा इसकी सूची बनाई जानी चाहिए तथा कीर्तन सेवा के प्रमुख व्यक्ति को इस सूची की पूरी जानकारी होनी चाहिए।

५. कीर्तन सेवा के प्रमुख भक्त ही इस बात का निर्णय लेंगे कि किस स्थान पर कितनी देर रुकना है। ऐसे भक्तों का रथ पर स्थित भक्तों से उचित तालमेल होना चाहिए।

६. करताल तथा मृदंग वादकों को एक-दूसरे से सहयोग करके तालबद्ध कीर्तन करने में सहायता करनी चाहिए। उन्हें कीर्तन गायक के वेग के साथ संतुलन बनाना चाहिए, उन्हें अपने वेग से संतुलन साधने के लिए विवश न करें।

७. कीर्तन गायक जिस राग तथा धुन में गा रहे हों उसी धुन में सभी को गाना चाहिए।

उ) पंडाल-कार्यक्रम

१. पंडाल में होने वाले कार्यक्रमों के समय या तो भक्त दी गई सेवा करें अथवा पंडाल में होने वाले प्रवचन और कीर्तन आदि कार्यक्रमों में सक्रिय भाग लें।

२. प्रसाद के समय अतिथि, बच्चों तथा माताओं को प्रधानता दें।

३. प्रसाद वितरण करने वाले भक्त योग्य मात्रा में ही (अर्थात् न अधिक और न कम) और प्रेमपूर्वक प्रसाद वितरण करें। प्रसाद वितरक उद्दंड तथा दूसरों को खराब लगे ऐसा व्यवहार न करें। प्रसाद कम हो तो वितरक नम्रता तथा चतुराईपूर्वक उसका वितरण करे। लोग जब प्रसाद वितरण केंद्र पर आयें तब उन्हें भगाना नहीं चाहिए।

ऊ) सर्वसामान्य नियम–

१. हमें जो सेवा दी गई हो उसे निपुणता से तथा उत्तरदायित्व के साथ करना चाहिए। हम जिस स्थान पर सेवा कर रहे हैं, वह स्थान अथवा वह सेवा उस सेवा के प्रमुख व्यक्ति को सूचित किये बिना छोड़कर हमें नहीं जाना चाहिए।

२. अभिभावक अपने बच्चों का ध्यान रखें। विशेष रूप से पदयात्रा एवं पंडाल में।

३. आप अपनी महत्त्वपूर्ण वस्तुओं तथा धन के लिए स्वयं उत्तरदायी हैं। आपको जितने धन की आवश्यकता है उतना ही लेकर आयें तथा उसका उचित ध्यान रखें।

४. रहने वाले स्थान को छोड़ने से पूर्व इस बात की जाँच कर लें कि कोई वस्तु छूट न जाये।

परिशिष्ट १

तिलक लगाने की विधिः—

पद्मपुराण में कहा गया है कि तिलक के मध्य भाग में श्रीविष्णु निवास करते हैं। श्रील प्रभुपाद श्रीमद्‌भागवतम् के एक तात्पर्य में तिलक का गुणगान करते हुए लिखते हैं–

"कलियुग में सोना-चाँदी इत्यादि आभूषण प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है किन्तु शरीर के बारह स्थानों पर तिलक मंगलमय आभूषण है और शरीर को शुद्ध करने के लिए पर्याप्त है।"

इसलिए बीच के उस भाग में लीपापोती न करें। तिलक के बायें भाग में ब्रह्माजी एवं दायें भाग में सदाशिव का निवास होता है। इसलिए तिलक से सुशोभित शरीर को भगवान् श्रीविष्णु का मंदिर माना जाता है।

नाक के ऊपर केवल तीन-चौथाई भाग पर ही तिलक (तुलसी का चिह्न) लगाना चाहिए। तिलक के बीच के खाली स्थान दोनो भौहों से लेकर कपाल पर बालों तक होनी चाहिए। नाक के ऊपर का तिलक एवं कपाल का तिलक एक-दूसरे से मिला होना चाहिए।

स्नान के पश्चात् निम्नलिखित योग्य मंत्र का उच्चारण करते हुए शरीर के बारह स्थानों पर तिलक लगायें।

ललाटे केशवं ध्यायेन, नारायणं अथोदरे।
वक्षःस्थले माधवं तु, गोविन्दं कण्ठकूपके॥
विष्णुं च दक्षिणे कुक्षौ, बाहु च मधुसूदनम्।
त्रिविक्रमं कन्धरे तु, वामनं वाम पार्श्वके॥
श्रीधरं वामबाहौ तु, हृषीकेशं तु कन्धरे।
पृष्ठे च पद्मनाभं च, कट्यामं दामोदरं न्यसेत्॥

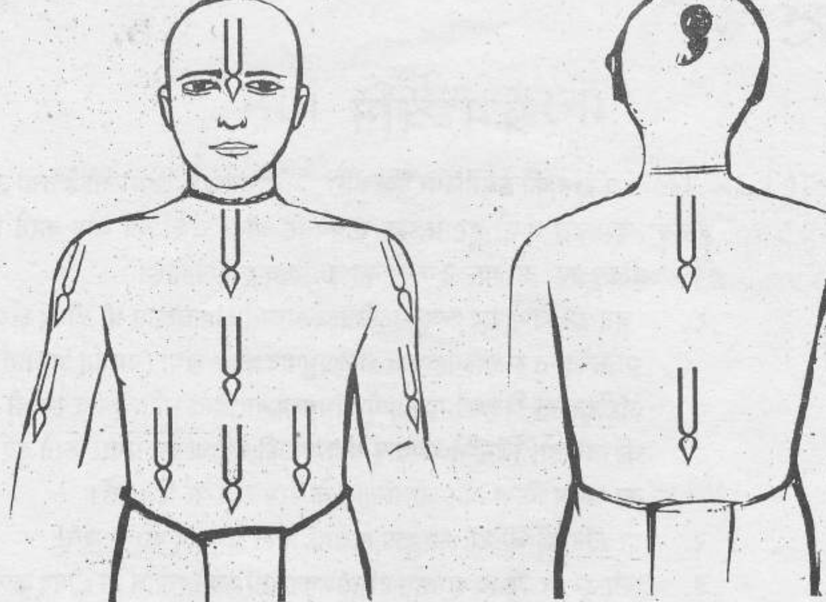

मस्तक पर	ॐ केशवाय नमः
नाभी के पास	ॐ नारायणाय नमः
छाती पर	ॐ माधवाय नमः
कंठ पर	ॐ गोविन्दाय नमः
पेट पर (दाहिनी ओर)	ॐ विष्णवे नमः
दाहिने हाथ की बाँह पर	ॐ मधुसूदनाय नमः
बाँह के पास दाहिने कंधे के पास	ॐ त्रिविक्रमाय नमः
पेट पर बायीं ओर	ॐ वामनाय नमः
बायें हाथ की बाँह पर	ॐ श्रीधराय नमः
बायें हाथ के कंधे के पास	ॐ ऋषिकेशाय नम
पीठ पर सिर के पास	ॐ पद्मनाभाय नमः
कमर पर	ॐ दामोदराय नमः

(अंत में हाथ धोने के बाद बचे हुए पानी को शिखा के ऊपरी भाग पर ॐ वासुदेवाय नमः के उच्चारण के साथ लगायें।)

परिशिष्ट २

प्रेमध्वनि

कीर्तन की समाप्ति पर एक वरिष्ठ भक्त यह प्रार्थना बोलते हैं तथा उपस्थित सभी भक्तवृंद दण्डवत् करते हुए प्रत्येक वाक्य के बाद 'जय' का घोष करते हैं। सभी को निम्नलिखित क्रम का पालन करने का प्रयत्न करना चाहिए।

१, जय ॐ विष्णुपाद परमहंस परिव्राजकाचार्य अष्टोत्तरशत् श्री श्रीमद् अभयचरणारविंद भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज श्रील प्रभुपाद की – जय! (अर्थात् आचार्य ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशत् त्रिदण्डी गोस्वामी अभयचरणारविन्द भक्तिवेदान्त स्वामी श्रील प्रभुपाद की जय हो, जिन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण की महिमा का प्रचार करते हुए सम्पूर्ण पृथ्वी का भ्रमण किया और जो संन्यास के परम स्तर पर स्थित हैं।

२. इस्कॉन बी.बी.टी. संस्थापकाचार्य श्रील प्रभुपाद की – जय!

३. जय ॐ विष्णुपाद परमहंस परिव्राजकाचार्य अष्टोत्तरशत् श्री श्रीमद् कृष्णकृपाश्रीमूर्ति भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर श्रील प्रभुपाद की – जय!

४. अनन्त कोटि वैष्णव वृंद की – जय!

५. नामाचार्य श्रील हरिदास ठाकुर की – जय!

६. श्रीरूप, सनातन, भट्ट रघुनाथ, श्री जीव, गोपाल भट्ट, दास रघुनाथ षड् गोस्वामी प्रभुगण की – जय!

७. प्रेम से कहो श्रीकृष्ण चैतन्य, प्रभु नित्यानन्द, श्रीअद्वैत, गदाधर, श्रीवासादि गौर भक्त वृंद की – जय!

८. श्री श्रीराधाकृष्ण, गोप-गोपीनाथ, श्यामकुण्ड, राधाकुण्ड गिरि गोवर्धन की – जय!

९. श्री वृन्दावन धाम की जय! १०.श्री नवद्वीप धाम की – जय!

११. पुरुषोत्तम क्षेत्र श्री जगन्नाथ पुरी धाम की – जय!

१२. गंगादेवी की – जय! १३. यमुनादेवी की – जय!

१४. श्रीमती तुलसी महारानी की – जय! १५. श्रीमती भक्तिदेवी की – जय!

१६. हरिनाम संकीर्तन की – जय! १७. समवेत भक्तवृंद की – जय!

१८. गौर प्रेमानन्दे – हरि-हरि बोल!

१९. ऑल ग्लोरीज टू असैम्बल डिवोटीज (अर्थात् समागत भक्तवृद की जय हो)– हरे कृष्ण! (तीन बार)

२०. ऑल ग्लोरीज टू श्री गुरु एण्ड गौरांग (अर्थात् श्री गुरु-गौरांग की जय हो)– हरि, हरि बोल!

इसके बाद सभी लोग मन में गुरु प्रणाम मंत्र तथा श्रील प्रभुपाद प्रणति मंत्र बोलें।
(* टिप्पणी – इन प्रेमध्वनिओं को भक्त स्वेच्छापूर्वक बोल सकते हैं।)

परिशिष्ट ३

भोग अर्पित करना

भोग अर्पित करते समय बोली जाने वाली प्रार्थना–

नैवद्य के लिए बनाये गय सभी व्यंजन श्रीविग्रह की थाली में सुचारू रूप से परोस दें। इसके पश्चात् थाली मंदिर में भगवान् के सम्मुख रखें। बायें हाथ से घंटी बजायें एवं प्रत्येक मंत्र का तीन बार उच्चारण करें।

१. श्री गुरु प्रणति–

नमः ओउम् विष्णुपादाय कृष्ण प्रेष्ठाय भूतले।
श्रीमते (गुरु का नाम) स्वामिनिति नामिने॥

२. श्रील प्रभुपाद प्रणति–

नमः ओउम् विष्णुपादाय कृष्ण प्रेष्ठाय भूतले।
श्रीमते भक्तिवेदान्त स्वामिनिति नामिने॥
नमस्ते सरस्वती देवे गौर वाणी प्रचारिणे।
निर्विशेष शून्यवादी पाश्चात्य देश तारिणे॥

३. नमो महावदान्य कृष्णप्रेम प्रदायते।
कृष्णाय कृष्णचैतन्य नाम्ने गौरत्विषे नमः॥

"हे अत्यन्त दयालु अवतार! आप स्वयं श्रीकृष्ण हैं जो श्रीचैतन्य महाप्रभु के रूप में अवतरित हुए हैं। श्रीमती राधारानी का गौर वर्ण स्वीकार कर के आप सभी को कृष्णप्रेम बाँट रहे हैं। हमारा विनम्र प्रणाम स्वीकार करें।"

४. नमो ब्रह्मण्यदेवाय गो ब्राह्मण हिताय च।
जगद्हिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः॥

"हे प्रभु! आप गायों व ब्राह्मणों के शुभचिंतक हो तथा आप सम्पूर्ण मानव समाज एवं जगत् के शुभचिंतक हो।"

५. (जय) श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु नित्यानन्द।
श्री अद्वैतगदाधर श्रीवासादि गौरभक्त वृन्द॥

६. हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

नैवेद्य मंदिर में कुछ समय के लिए रखें तत्पश्चात् प्रणाम अर्पित करके उसे उठा लें।

परिशिष्ट – ४

प्रसाद प्रार्थना

१. भगवत्प्रसाद की स्तुतिः

महाप्रसादे गोविन्दे नाम ब्राह्मणी वैष्णवे।
स्वल्प पुण्य वताम् राजन् विश्वासो नैव जायते॥

"हे राजन्, जब तक कोई व्यक्ति भगवान् को अर्पित किये प्रसाद तथा भगवान् के पवित्र नाम एवं वैष्णवों का आश्रय नहीं लेता, तब तक यद्यपि उसने कितने भी पुण्यकर्म क्यों न किये हों, गोविन्द के प्रति उसकी श्रद्धा नहीं बढ़ सकती।"

२.

शरीर अविद्या जाल, जोडेन्द्रिय ताहे काल,
जीवे फेले विषय सागोरे
ता'र मध्ये जिह्वा अति, लोभोमोय सुदुर्मति
ता'के जेता कठिन संसारे
कृष्णबोड़ो दोयामोय, कोरिबारे जिह्वा जय,
स्वप्रसाद अन्नदिलो भाई
सेई अन्नामृत पाओ, राधाकृष्ण गुण गाओ,
प्रेमे डाको चैतन्य निताई

"हे भाई! यह भौतिक शरीर अविद्या का जाल है और इंद्रियाँ जीव की शत्रु हैं क्योंकि उन्होंने जीव को भौतिक इंद्रियतृप्ति के सागर में फेंक दिया है। समस्त इंद्रियों में भी जिह्वा अत्यन्त लालची और दुर्मति है और इस जगत् में इसे जीत पाना अत्यन्त कठिन है।

"हे भाई! श्रीकृष्ण अत्यन्त दयालु हैं–केवल जिह्वा को नियंत्रित करने के लिए उन्होंने अपना प्रसाद हमें प्रदान किया है! अब कृपया श्री श्रीराधा और श्रीकृष्ण का गुणगान करते हुए इस प्रसाद को ग्रहण करो और प्रेमपूर्वक जोर से "चैतन्य-निताई!" पुकारो।"

(ध्यान दें– एकादशी के दिन केवल पहले मंत्र का उच्चारण करें।)

परिशिष्ट ८

पंचतत्त्व मंत्र का महत्त्व

(जय) श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु नित्यानन्द।
श्री अद्वैतगदाधर श्रीवासादि गौरभक्त वृन्द॥

श्रीचैतन्य महाप्रभु सदैव अपने पूर्ण विस्तार श्रीनित्यानन्द प्रभु, अपने अवतार श्रीअद्वैत प्रभु, अपनी अंतरंगा शक्ति श्रीगदाधर प्रभु तथा अपनी शक्ति श्रीवास प्रभु के संग में रहते हैं। वे इनके बीच पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के समान हैं। सभी को यह ध्यान रखना चाहिए कि श्रीचैतन्य महाप्रभु सदैव इन तत्त्वों के साथ रहते हैं। इसलिए श्रीचैतन्य महाप्रभु को किया गया प्रणाम तभी पूर्ण होता है जब हम सम्पूर्ण पंचतत्त्व मंत्र–(जय) श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु नित्यानन्द, श्री अद्वैतगदाधर श्रीवासादि गौरभक्त वृन्द–बोलते हैं। कृष्णभावनामृत संघ में प्रचारक होने के कारण हम सर्वप्रथम इस पंचतत्त्व मंत्र का जप करके श्रीचैतन्य महाप्रभु की वंदना करते हैं और उसके पश्चात् हम हरे कृष्ण महामंत्र–हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे– का जप करते हैं। हरे कृष्ण महामंत्र का जप करते समय अपराध हो सकते हैं। परन्तु पंचतत्त्व मंत्र का जप करते समय अपराधों की गणना नहीं होती है। श्रीचैतन्य महाप्रभु 'महावदान्याय अवतार' अर्थात् सर्वाधिक उदार हृदय के अवतार के रूप में प्रसिद्ध हैं क्योंकि वे पतित जीवों के द्वारा किये गये अपराधों को अनदेखा करते हैं इसलिए हरे कृष्ण महामंत्र के जप का सम्पूर्ण लाभ लेने के लिए हमें पहले श्रीचैतन्य महाप्रभु की शरण में जाकर पंचतत्त्व मंत्र बोलना चाहिए तत्पश्चात् हरे कृष्ण महामंत्र का जप करना चाहिए। यह अधिक उपयुक्त विधि है।

परिशिष्ट ६

अतिथि सेवा

(मंदिर या घर में)

संस्कृत शब्द अतिथि का अर्थ है 'बिना तिथि के' अथवा अनपेक्षित मेहमान। वह भगवान् का प्रतिनिधि माना जाता है *(अतिथि देवो भव)*। इनका आना भगवान् के द्वारा भक्तों की परीक्षा ही है अतः भक्तों को प्रत्येक परिस्थिति में सेवा के लिए तत्पर रहना चाहिए। इसी भाव से अतिथि सेवा करनी चाहिए।

अंतर्राष्ट्रीय कृष्णभावनांमृत संघ में अतिथि सेवा अत्यन्त महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह प्रचार की संस्था है।

१) अच्छी तरह अतिथि सेवा करने से लोग बार-बार मंदिर में आने की इच्छा करेंगे और अंत में भगवान् के भक्त बन जायेंगे।

२) बारम्बार आने वाले, निमंत्रित व्यक्ति, आजीवन सदस्य, मिलने के लिए आये वैष्णव अथवा उनके सम्बन्धियों से इस प्रकार व्यवहार करें कि उन्हें मंदिर अथवा घर में अत्यन्त सुखद वातावरण मिले और वे बार-बार आने की इच्छा करें।

३) सभी भक्तों को यह सीखना आवश्यक है कि अतिथि से किस प्रकार व्यवहार करें। जो भक्त प्रतिदिन मंदिर में भगवान् की पूजा करते हैं उन्हें इस विषय में दक्ष होना आवश्यक है, क्योंकि वे मंदिर के निवासियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। यदि अतिथि-सत्कार ठीक से नहीं करेंगे तो प्रथम श्रेणी की पूजा भी व्यर्थ चली जाती है।

४) अतिथि सेवा गृहस्थों का प्रथम कर्तव्य है। जो गृहस्थ अत्यन्त सावधानीपूर्वक अतिथि सेवा नहीं करते वे गम्भीर पाप करते हैं। गृहस्थों के साथ-साथ अन्य वर्णाश्रम के लोगों को भी अतिथि सेवा करना आवश्यक है।

५) अतिथि-सत्कार में अतिथि की आवश्यकताओं को पूर्ण करना एक महत्वपूर्ण विषय है, यथा—बैठने का आसन, भोजन, जल, प्रेमभरे शब्द तथा विश्राम करने के लिए स्थान।

६) अतिथि के आने पर उनके समक्ष जाकर आदरपूर्वक स्वागत करें। विदाई के समय भी द्वार तक उनके साथ जायें।

पंचरात्रिक विधि के अनुसार इस प्रकार आदर प्रदर्शित करें

१) अतिथि यदि वरिष्ठ व्यक्ति है तो हमें अपने स्थान से उठ जाना चाहिए।

२) अपना परिचय देकर उन्हें उपहार देने चाहिए।

३) उन्हें पंचांग अथवा अष्टांग प्रणाम करें।

४) सादगीपूर्ण एवं सुन्दर वस्तुएँ अर्पित करें।

५) अतिथि पूजा इस प्रकार से कर सकते हैं–पैर धोने के लिए पानी देना, मस्तक पर चंदन का लेप करना, फूलों के हार अर्पित करना एवं बैठने के लिए आसन प्रदान करना।

६) प्रेमपूर्वक उपहार प्रदान करना, जैसे, वस्त्र, आभूषण अथवा धान्य इत्यादि देकर उनका सम्मान करना।

वरिष्ठ भक्त, माता-पिता तथा गुरुजनों को अपने स्थान से उठकर अपना परिचय दें एवं आदरपूर्वक प्रणाम करें। गुरु की पूजा करें एवं उपहार अर्पित करें।

एक अतिथि के रूप में हमारा व्यवहार कैसा हो?

कहीं भी एक वैष्णव अतिथि का व्यवहार अत्याधिक सभ्य होना आवश्यक है। वैष्णव अतिथियों के लिए कुछ सामान्य नियम इस प्रकार हैं–

१) यदि निमंत्रित अतिथि हैं तो बुलाये गये निर्धारित समय से अधिक समय तक वहाँ न रुकें। उदाहरणार्थ, यदि भोजन के लिए बुलाये गये हों तो कुछ समय विश्राम के लिए रुक सकते हैं परन्तु अधिक समय तक रुककर अन्यों को कष्ट न दें।

२) आमंत्रित स्थल पर अपनी इच्छा से किसी दूसरे व्यक्ति को साथ न ले जायें। यदि किसी अन्य व्यक्ति को भी ले जाना हो तो सम्बन्धित व्यक्ति से सम्पर्क करके उनकी अनुमति प्राप्त करके ही ले जायें।

३) फोन, फैक्स जैसे उपकरणों का उपयोग करने की अनुमति लेने पर उनका उपयोग करने के पश्चात् उनकी निर्धारित धनराशि अवश्य दें।

४) यदि आप मित्र के घर अथवा अनिमंत्रित स्थान पर जा रहे हो तो सम्बन्धित व्यक्ति को यह अवश्य सूचित कर दें कि आप कितने समय तक रहने वाले हैं।

५) अनिमंत्रित स्थान पर यदि पूर्व सूचना नहीं दी गई हो तो सम्बन्धित व्यक्ति के घर अथवा मंदिर में रात को अथवा दोपहर में न जायें क्योंकि यह समय सम्बन्धित व्यक्ति या भगवान् के विश्राम का समय होता है।

६) यदि किसी के घर कुछ दिन तक निवास किया हो तो कृतज्ञता स्वरूप उन्हें कुछ उपहार प्रदान करें।

वैष्णव सेवा करने की विधि

वरिष्ठ वैष्णव, संन्यासी तथा आध्यात्मिक गुरु के साथ अत्यन्त सावधानीपूर्वक व्यवहार करें। उनके आने के पूर्व ही उनका कमरा स्वच्छ करके, आवश्यक वस्तुएँ यथा, पंचपात्र, तिलक, आईना, गम्छा, पीने का पानी, साफ बिस्तर इत्यादि वहाँ रख देनी चाहिए।

यदि सम्भव हो तो श्रील प्रभुपाद रचित ग्रंथों का संचय तथा अगरबत्ती, स्टैण्ड, दियासलाई एवं फूलों के हार से सुसज्जित भगवान् की तस्वीर कमरे में रखें। वरिष्ठ वैष्णव

अतिथि के स्वागत हेतु स्वयं सामने जाकर कीर्तन करना, फूलों के हार एवं चंदन का लेप करना चाहिए।

दण्डवत् अर्पित करके मधुर शब्दों से स्वागत करें एवं बैठने के लिए आसन प्रदान करें। अपने गुरु महाराज के आने पर उनकी अनुमति से पादपूजा के पश्चात् आरती द्वारा गुरुपूजा करके चरणों पर पुष्प अर्पित करें।

अतिथि का परिचय देने के पश्चात् यदि कोई विशेष सेवा हो तो उसके बारे में उनसे पूछें। अतिथि के विश्राम एवं उनके प्रसाद की उचित व्यवस्था करें।

उनके ठहरने के बारे में जानकारी ले लें जिससे समूचित व्यवस्था अच्छी तरह से हो सके, परन्तु उनसे पूछते समय उन्हें इस बात की बिल्कुल गलतफहमी न हो कि हम उनके जाने के लिए उत्सुक हैं। इसका विशेष ध्यान रखें। उन्हें अधिक से अधिक दिनों तक ठहरने के लिए उत्साहित करें।

परिशिष्ट ७
दस नाम अपराध

१. भगवन्नाम का प्रचार करने वाले महाभागवतों की निन्दा करना।
२. शिव, ब्रह्मा आदि देवों के नामों को भगवान् के नाम के समान अथवा उनसे स्वतन्त्र समझना।
३. गुरु की अवज्ञा करना।
४. वैदिक शास्त्रों अथवा प्रमाणों का खंडन करना।
५. हरे कृष्ण महामंत्र के जप की महिमा को काल्पनिक समझना।
६. पवित्र भगवन्नाम में अर्थवाद का आरोप करना।
७. भगवान् के नाम के बल पर अपराध करना।
८. हरे कृष्ण मंत्र के जप को वेदों में वर्णित किसी शुभ-सकाम कर्म या कर्मकाण्ड के समान समझना।
९. अश्रद्धालु व्यक्ति को कृष्णनाम की महिमा का प्रचार करना।
१०. भगवन्नाम के जप में पूर्ण विश्वास न होना तथा इसकी इतनी अगाध महिमा सुनने पर भी विषयासक्ति बनाये रखना

ध्यानपूर्वक जप न करना भी एक अपराध है। स्वयं को वैष्णव समझने वाले प्रत्येक भक्त को इन सभी अपराधों से बचना चाहिए जिससे उसे शीघ्रातिशीघ्र अभिष्ट सिद्धि अर्थात् 'कृष्णप्रेम' की प्राप्ति हो।

परिशिष्ट ८

आरती

मंदिर के पास सदैव रहने वाली वस्तुएँ:

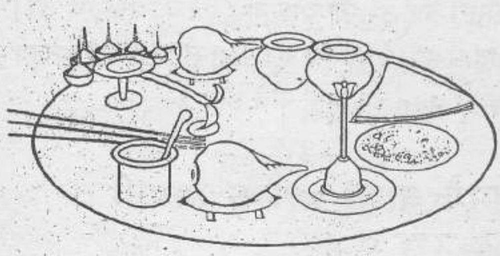

- चामर
- मोरपंख
- घंटी
- आचमन पात्र
- शंख धोने के लिए पानी से भरा ताँबे का लोटा (ढक्कन सहित)
- आरती करते समय खड़े रहने अथवा बैठने के लिए आसन

आवश्यक सामग्री

एक थाली में निम्नलिखित सामग्री ध्यानपूर्वक रखकर वह थाली मंदिर के बायीं ओर रखें।

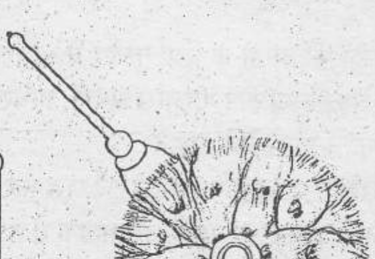

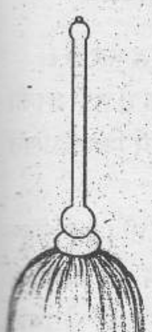

१. छोटा दीपक (अगरबत्ती एवं पंचदीप जलाने के लिए)।
२. माचिस
३. तीन अगरबत्ती (अगरबत्ती स्टेंड के साथ)
४. घी सहित पंचदीप (एक अथवा तीन बत्तियों वाला दीपक भी हो सकता है)
५. अर्घ्य अर्पण करने वाला शंख (स्टैंड सहित)
६. सामान्य अर्घ्य जल वाला छोटा ताँबे का पात्र
७. विसर्जन पात्र (अर्घ्यजल अर्पण करने के पश्चात् जल जमा करने वाला पात्र)
८. स्वच्छ वस्त्र अथवा छोटा हाथ रूमाल
९. सुगंधित फूलों से भरी छोटी थाली
१०. चामर
११. मोरपंख (केवल गर्मी के दिनों के लिए)

आचमन पद्धति–

पूजा/ आरती करने के पूर्व स्वयं को शुद्ध करने के लिए आचमन किया जाता है। आचमन के लिए पानी आचमन पात्र में रखा जाता है।

१. आसन पर खड़े रहकर आचमन पात्र का पानी चम्मच द्वारा दायें हाथ की हथेली पर तीन बार डालें। ॐ केशवाय नमः का उच्चारण करके हथेली का थोड़ा जल हथेली के मूल भाग की ओर से प्राशन करें, तत्पश्चात् और एक बूंद जल लेकर हथेली पर से नीचे छोड़ दें।

२. इस विधि को और दो बार करें। दूसरी बार ॐ नारायणाय नमः तथा तीसरी बार ॐ माधवाय नमः मंत्र का उच्चारण करें।

३. अंत में हथेली पर तीन बूँद पानी लेकर ॐ गोविन्दाय नमः मंत्र का उच्चारण करते हुए पानी नीचे छोड़ दें।

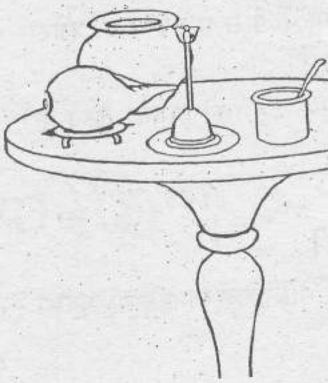

अर्पण करने वाली प्रत्येक सामग्री के शुद्धिकरण की विधि

दाहिने हाथ में आचमन पात्र से जल लेकर बायें हाथ में स्थित सामग्री पर तीन बूँद डालें।

आरती विधि का क्रम

प्रणाम करके आरती आरंभ करने की आज्ञा के लिए गुरुदेव से याचना करें।

१. आरम्भ में आरती के प्रारंभ के संकेत स्वरूप तीन बार शंख बजायें; तत्पश्चात् उस शंख को आचमन पात्र में रखे जल से शुद्ध करके रख दें।

२. एक दीपक जला लें। (अर्पण करने के पूर्व प्रत्येक सामग्री को शुद्ध कर लें।)

३. हम श्री गुरुदेव के प्रतिनिधि के रूप में आरती कर रहे हैं, इस भावना से तथा उनकी अनुमति लेने के लिए प्रत्येक सामग्री अर्पित करते समय आरम्भ में निम्नलिखित क्रिया करें।

आसन पर खड़े रहकर बायें हाथ से घंटी बजाते हुए प्रत्येक वस्तु तीन बार श्रीगुरु को, एक बार परमगुरु (श्रील प्रभुपाद) को व श्रीनित्यानन्द प्रभु को, तीन बार श्रीचैतन्य महाप्रभु को तथा एक बार श्रीमती राधारानी को दिखायें। (निम्नलिखित विधि श्री श्रीराधा-गोपीनाथ मंदिर में स्थित विग्रहों की आरती के अनुरूप है।)

तत्पश्चात् प्रत्येक वस्तु के लिए विग्रहों का क्रम इस प्रकार रखें–

श्रीगोपीनाथ जी

श्रीमती राधारानी

श्रीगोपाल जी
श्रीचैतन्य महाप्रभु
श्रीनित्यानन्द प्रभु
श्रीनृसिंहदेव (केवल ३ बार)
श्रीमती तुलसी महारानी (केवल ३ बार)
श्री परमगुरु (श्रील प्रभुपाद)
श्रीगुरु
उपस्थित भक्त (केवल ३ बार)

-- आरती अत्यन्त भक्तिमय भावना में तथा आरती उतारने की क्रिया सुंदर रूप से होनी चाहिए। समय के बंधन में प्रत्येक क्रिया सुचारू रूप से समय विभाजित करके अर्पण करें। अत्यन्त धीमी गति से अथवा तीव्र गति से आरती न करें।

आरती करते समय ध्यान रखें कि अर्पित की जा चुकी वस्तु अर्पित नहीं की गई वस्तुओं में न मिले।

प्रत्येक वस्तु किस क्रम में तथा कितनी बार अर्पित करें–

१. अगरबत्ती– अर्चविग्रहों को अगरबत्ती अर्पण करते समय सात बार पूरे शरीर को अर्पित करें।
२. पंचारती– ४ बार चरणकमलों को, २ बार नाभीकमल को, ३ बार मुखकमल को तथा ७ बार पूरे शरीर को अर्पित करें।
३. अर्घ्य (जल)–शंख से अर्घ्य ३ बार मस्तक पर तथा ७ बार पूरे शरीर को अर्पित करें। प्रत्येक को अर्पित करने के बाद विसर्जन पात्र में थोड़ा जल निकालें तथा बाद में दूसरों को अर्पण करें। इस प्रकार का क्रम सभी के लिए करें।
४. वस्त्र अथवा रूमाल– पूरे शरीर को सात बार दिखायें।
५. पुष्प– सर्वांग को ७ बार अर्पण करें।
६. चामर– बचे हुए समय के अनुसार प्रत्येक को विभाजित करके अच्छी तरह चामर दिखायें।
७. मोरपंख– बचे हुए समयानुसार प्रत्येक को पंखा अर्पित करें। ठंड के मौसम में पंखा अर्पित न करें।
८. आरती के अंत में तीन बार शंख बजायें।
९. विसर्जन पात्र के जल को सभी उपस्थित भक्तों पर छिड़कें तथा स्वयं पर भी छिड़क लें।
१०. सभी सामग्रियों को हटाकर कपड़े से आरती के स्थान, आसन इत्यादि को स्वच्छता से पोंछ लें।
११. मंदिर के बाहर आकर दंडवत प्रणाम अर्पित करें।

परिशिष्ट ९

श्रीतुलसी आरती

आवश्यक सामग्री

एक थाली में निम्नलिखित सामग्री रखें।

१. दो आचमन पात्र;
२. एक घंटी;
३. तीन अगरबत्ती (स्टैंड के साथ);
४. दो दीपकः एक आरती अर्पण करने के लिए तथा दूसरा अगरबत्ती एवं आरती जलाने के लिए;
५. एक छोटी थाली में फूल।

आरती विधिः–

१. पहले आचमन करें।
२. अगरबत्तीः सात बार श्रीमती तुलसी महारानी के पूरे शरीर को अर्पित करें।
३. एक दीपकः ४ बार चरणकमलों को, २ बार नाभीकमल को, ३ बार मुखकमल को तथा ७ बार सर्वांग को अर्पित करें।
४. पुष्पः सात बार सर्वांग को अर्पित करें।

तत्पश्चात् पंचांग प्रणाम करें।

प्रत्येक सामग्री अर्पित करने से पूर्व आचमन पात्र से पानी लेकर तीन बार उसपर छिड़ककर शुद्ध करें।

परिशिष्ट १०

पवित्र तीर्थस्थल के प्रति दस अपराध (धाम अपराध)

१. पवित्र तीर्थस्थानों के महत्त्व को प्रकट करने वाले गुरु की अवज्ञा तथा अपमान करना।

२. ऐसा मानना कि पवित्र तीर्थस्थान अनित्य हैं।

३. तीर्थस्थान में रहने वाले लोगों पर अथवा वहाँ पर आये हुए यात्रियों पर जोर-जबरदस्ती करना अथवा उन्हें सामान्य सांसारिक व्यक्ति मानना।

४. पवित्र तीर्थस्थान में रहते समय सांसारिक कार्य करना।

५. मूर्तिपूजा अथवा पवित्र नाम जप का व्यापार करना अथवा उसके माध्यम से धन कमाना।

६. पवित्र तीर्थस्थान किसी भौतिक राज्य अथवा प्रदेश का हिस्सा है ऐसा विचार करना या भगवान् के धाम को अन्य देवताओं से संबंधित तीर्थस्थानों के समान समझना या पवित्र तीर्थस्थान के क्षेत्र को मापने का प्रयास करना।

७. तीर्थक्षेत्र में निवास करते समय पापकृत्य करना।

८. वृन्दावन तथा नवद्वीप विभिन्न हैं यह मानना।

९. तीर्थस्थलों के महत्त्व बताने वाले शास्त्रों की निंदा करना।

१०. अश्रद्धा से तीर्थस्थान के महत्त्व को काल्पनिक समझना।

गृहस्थ आश्रम

१. गृहस्थ आश्रम का महत्त्व एवं उद्देश्य

- आध्यात्मिक संस्कृति में 'आश्रम' वह स्थान है, जिसके केंद्रबिन्दु श्रीकृष्ण होते हैं।
- आध्यात्मिक संस्कृति इन चारों आश्रमों के लिए समान है।
- चारों आश्रमों में अंतर केवल वैराग्य की तीव्रता तथा जीविका उपार्जन के साधनों में ही है। परन्तु चारों आश्रम महत्त्वपूर्ण हैं।
- नियमों का पालन करना।
- गृहस्थ आश्रम एक प्रकार से नियमित इंद्रियभोग के लिएं दी गई छूट है, जिससे व्यक्ति धीरे-धीरे संसार से विरक्त हो सके।
- मनु संहिता बताती है कि गृहस्थ आश्रम उत्कृष्ट है क्योंकि वह अन्य तीनों आश्रमों का पालन-पोषण करता है तथा तीनों का मूल है।
- यद्यपि व्यावहारिक दृष्टि से शास्त्रों में वर्णित गृहस्थ आश्रम के कर्तव्यों तथा उत्तरदायित्वों का पालन करना कठिन प्रतीत होता है फिर भी हमें इन शास्त्रीय विधानों के भाव को अपने जीवन में अंगीकार करने का प्रामाणिकता से प्रयत्न करना चाहिए।

२. गृहस्थ जीवन के कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व

अ) सर्वसामान्य

- चारों आश्रमों के सदस्यों की देखभाल करना।
- सभी जीवों को आश्रय प्रदान करना तथा यज्ञ करना। (श्रीमद्भागवतम् ११.१८.४२)
- वरिष्ठ लोगों की सेवा करना। (श्रीचैतन्य चरितामृत, आदि १५.२१)
- सभी के हित के लिए कार्य करना। (श्रीचैतन्य चरितामृत आदि १०.४१)
- अतिथि सेवा–भगवान् का आदेश।
- दीन-हीन, गरीबों पर दया करना। (श्रीचैतन्य चरितामृत, अन्त्य ३.२३८)

- भक्तों की सेवा करना गृहस्थों का मुख्य कर्तव्य है। (श्रीचैतन्य चरितामृत, अन्त्य १६.५७-६०)
- भगवान् के पवित्र नाम का सतत जप करना। वैष्णवों, भगवान् एवं अपने सगे-संबंधियों की योग्य विधि से अर्जित धन द्वारा सेवा करना। (श्रीचैतन्य चरितामृत मध्य १५.१०५)
- गृहस्थ आश्रम के कर्तव्यों का पालन करने के लिए लोगों को अधिक श्रम करना चाहिए।
- गृहस्थों को पितृ, साधु, संत, देवता, जीव तथा अन्यों का ऋण, यज्ञ अथवा अन्य कर्मकाण्डों द्वारा लौटाना पड़ता है। परन्तु भगवान् श्रीकृष्ण की शरण में जाने से उनकी सभी ऋणों से तत्काल मुक्ति हो जाती है।

ब) जीवन पद्धति तथा जीवन निर्वाह–

गृहस्थ निम्नलिखित कार्य न करें।

१. ऐसी कोई भी बात जिसका संबंध श्रीकृष्ण से न हो।
२. भौतिकवादी लोगों का संग।
३. पत्नी, बच्चे, मित्र आदि के संग में घरेलू सुख-सुविधा में आसक्त होना, तथा
४. कर्तव्यों के निर्वाह में उदासीन होना।

-- प्रातःकाल शीघ्र उठकर स्नान करना। विग्रहों की अर्चना करना, नाम जप करना तथा बड़ों को सम्मान देना।
-- अपने संचित कर्मफल में जो कुछ भी है, उससे संतुष्ट रहना तथा अपनी सम्पूर्ण शक्ति से भगवान् की सेवा करना।
-- गृहस्थों को अपने गुण-कर्म के अनुसार उचित कार्य करके अपना जीवननिर्वाह करना चाहिए। अयोग्य तथा अवैध कर्म न करें।
-- रिश्वतखोरी न करें तथा अपने आश्रितों को भी न लेने दें। (श्रीचैतन्य चरितामृत २.९०, १४२-१४४)

-- शरीर तथा आत्मा को एक साथ रखने के लिए जितना आवश्यक हो उतनी ही कमाई करनी चाहिए।
-- केवल भक्तियोग का पालन करने के लिए ही धन कमायें। (जैसे, विग्रहों की अर्चना, उत्सव मनाना, भक्तों को घर बुलाना, यात्रा इत्यादि) केवल इंद्रियभोग के लिए पैसा न कमायें।
-- स्वयं की जीवन पद्धति को इस प्रकार संयोजित करें जिससे जीवन में भगवान् के विषय में श्रवण-कीर्तन करने के लिए योग्य अवसर उपलब्ध रहे।

क. समर्पण

- घरेलू जीवन में घटित होने वाली पाँच प्रकार की हिंसा का प्रायश्चित करने के लिए गृहस्थों को पाँच प्रकार के महायज्ञ करना आवश्यक है।
- इस कलियुग में 'संकीर्तन यज्ञ' स्वयं में सम्पूर्ण यज्ञों को समाविष्ट करने वाला परिपूर्ण यज्ञ है।

इ. अतिथियों का आदर-सत्कार

- घर आये अतिथि की जितनी संभव हो उतनी सेवा करनी चाहिए। गृहस्थ आश्रम के लिए यह एक विशेष नियम है– *'अतिथि देवो भव'*।
- जिन लोगों के पास रहने के लिए उचित स्थान नहीं है तथा खाने के लिए अन्न नहीं हैं ऐसे निर्धन लोगों के लिए गृहस्थ आश्रम में स्थित व्यक्ति ही एकमात्र सहारा हैं।
- अतिथि सत्कार का अर्थ है मीठे शब्दों से स्वागत करना, बैठने के लिए आसन तथा जल अथवा भोजन प्रदान करना।
- शास्त्रों के अनुसार जब अतिथि असंतुष्ट होकर चला जाता है तो वह अपने साथ उस गृहस्थ के पुण्य भी लेकर जाता है तथा स्वयं के पाप पीछे छोड़ जाता है।
- प्रत्येक भोजन के पूर्व गृहस्थों को साधु के समान (भिक्षुक) अतिथियों को भोजन देने का प्रयास करना चाहिए।
- गृहस्थों को सर्वप्रथम अतिथि, विवाहित पुत्री, बीमार व्यक्ति, गर्भवती स्त्री, वृद्ध व्यक्ति तथा बच्चों को भोजन देना चाहिए तथा उसके पश्चात् स्वयं भोजन के लिए बैठना चाहिए।
- जो भी व्यक्ति दान धर्म न करके स्वयं पंच-पकवान का भोग करते हैं वे केवल पाप खाते हैं। (हरिभक्तिविलास)
- अतिथियों की सेवा अत्यन्त प्रेमपूर्वक तथा आदर के साथ करनी चाहिए। कृत्रिम रूप से केवल एक कर्म समझकर उनकी सेवा न करें।

ई) वरिष्ट व्यक्तियों की सेवा

- गृहस्थों को स्वयं से बड़े वरिष्ठों से अत्यन्त नम्र, आदरयुक्त तथा सुखकारक संबंध रखना चाहिए (यदि वे भक्त नहीं हैं तो भी)।
- उनके साथ कभी भी निष्ठुर, गविष्ठ तथा परायों जैसा व्यवहार न करें।
- उन्हें आराम तथा आदर प्रदान करके उनकी सेवा करें।
- सब कुछ करते हुए गृहस्थों को अपनी कृष्णभावना में अत्यन्त दृढ़ रहना चाहिए।

फ) अन्य जीवों की सेवा

- उदार मन के बनिये तथा 'यह मेरा', 'यह उनका' इस प्रकार का भेदभाव न करें। उन सभी को अपने परिवार का सदस्य मानें। *(वसुधैव कुटुम्बकम्)*
- पड़ोसी तथा समाज के अन्य तत्त्वों से भी स्वयं के परिवार के समान व्यवहार करें।
- घरेलू कार्य करने वाले नौकरों से स्वयं के बच्चों के समान व्यवहार करें।
- पशुओं, कीड़ों, जन्तुओं इत्यादि की हत्या न करें।
- यदि योग्य उपाय तथा स्वच्छता का पालन करने पर भी वे घर में आते हैं तो उन्हें पारिवारिक सदस्यों के समान ही आश्रय दें।
- पशुओं को पालतू बनाकर घर में न रखें।

ग. पुत्रप्राप्ति

- चाणक्य पण्डित कहते हैं, "पुत्रहीनं गृहं शून्यं" अर्थात् पुत्र के बिना घर शून्य के समान है।
- धार्मिक विवाह का उद्देश्य ऐसे पुत्र की प्राप्ति करना है जो अपने माता-पिता को नरकवास से मुक्ति दिलाये।
- श्राद्ध करने तथा पुत्र प्राप्ति करने से पितरों को नरकवास से मुक्ति मिलती है।
- श्रील प्रभुपाद कहते हैं, "इसलिए पिता को वैष्णव बनना चाहिए तथा उसे अपने पुत्र का इस प्रकार पालन-पोषण करना चाहिए जिससे पुत्र भी वैष्णव बने, जिससे यदि भूल से भी पिता का नरक में पतन होता है तो पुत्र उसको मुक्ति दिलाये।
- वास्तव में यदि पालक वैष्णव हो तो उनके उद्धार के लिए उन्हें पुत्र की आवश्यकता नहीं होती है। वे केवल वैष्णव तथा भगवान् कृष्ण की कृपा पर आश्रित रहते हैं तथा अंत में भगवद्धाम प्राप्त करते हैं।

ज. संस्कार

- संस्कार शुद्धिकरण की एक प्रक्रिया है, जो व्यक्ति के लिए एक पापमुक्त शुद्ध जीवन के लिए आवश्यक है।
- इन संस्कारों का प्रारंभ गर्भधारण (गर्भाधान संस्कार) से होता है तथा किसी की मृत्यु, श्राद्ध अथवा अंत्येष्टि क्रिया के बाद समाप्त होता है।
- वैष्णवों के लिए सभी संस्कार पवित्र भगवन्नाम का जप/ कीर्तन तथा वैष्णवों को प्रसाद वितरण, इन दो क्रियाओं में केंद्रित होते हैं।

झ) बच्चों का पालन-पोषण

- बच्चों की उचित देखभाल करना माता-पिता का प्रथम कर्तव्य है। इससे अच्छे समाज का निर्माण होगा तथा सर्वत्र सुख-शान्ति होगी।
- अपने बच्चों के आध्यात्मिक विकास पर ध्यान देना माता-पिता का प्रमुख कर्तव्य है।
- प्रेम तथा नियम (अनुशासन) इनकी सहायता से पालक अपने बच्चों को उचित प्रशिक्षण दें।
- चाणक्य पण्डित कहते हैं, *"लालयेत पंच वर्षाणि, दश वर्षाणि ताडयेत....."* अर्थात् पाँच वर्ष तक बच्चों से प्यार-दुलार करें, दस वर्ष तक की आयु तक डाँट एवं मार (बच्चों को मारना) से नियंत्रित करें, पंद्रह वर्ष तक केवल दबाव रखें तथा सोलह वर्ष के उपरांत बच्चों से मित्र की तरह व्यवहार करें।
- माता-पिता की देखरेख में बच्चों को सदैव प्रेम, आश्रय तथा जिम्मेदारी का आभास होना चाहिए।
- माता-पिता द्वारा आदर्श व्यवहार तथा आदर्श जीवन पद्धति अंगीकार करनी चाहिए, जिससे बच्चें उनका अनुकरण करें।
- माता-पिता को दूसरों के दोष निकालना, एक-दूसरे से झगड़ा करना जैसी बातों को कदापि नहीं करना चाहिए, कम से कम बच्चों के सामने तो कभी नहीं।
- माता-पिता अपने घर में कृष्णभावनामय वातावरण का निर्माण करके प्रतिदिन कृष्णभक्तिमय क्रियाओं द्वारा बच्चों पर अच्छे संस्कार डालें।

३. स्त्रियों का स्थान

क. स्त्रियों का सदैव आदर एवं सम्मान करें।

- सदैव उनका आदर करें। (महाभारत के अनुशासन पर्व, अध्याय ४९ में भीष्मदेव द्वारा प्रदत्त शिक्षा तथा मनुसंहिता प्रकरण ३ में से)
- स्त्रियों से सदैव प्रेम, आदर तथा सम्मानपूर्ण व्यवहार करना चाहिए।
- जब स्त्रियों का आदर किया जाता है तब देवी-देवता भी प्रसन्न रहते हैं; परन्तु जहाँ उनका आदर नहीं होता है वहाँ सभी कार्य निष्फल होते हैं।
- यदि किसी घराने की स्त्री दुःखी हो तो शीघ्र ही वह घराना नष्ट हो जाता है।
- स्त्री संपन्नता का मूर्तिमान रूप है। जब उनका आदर-सम्मान किया जाता है तब भाग्यदेवी का भी आदर-सम्मान होता है। इस प्रकार का कुटुंब सुसंपन्न होता है। स्त्रियों का अपमान करने से भाग्यदेवी का भी अपनाम होता है।
- जिस घर में स्त्रियों का उचित आदर न हो वह घर उनके श्राप से इस प्रकार नष्ट हो

जाता है जैसे किसी जादू द्वारा नष्ट किया गया हो।

- पुरुषों की पवित्रता स्त्रियों पर निर्भर है....अतः हे पुरुषों! उनकी सेवा करो तथा उन्हें आदर प्रदान करो।

ख. उनका समाज में महत्त्वः–

- बच्चों पर, परिवार पर तथा सम्पूर्ण समाज में उत्तम संस्कार निरोपित करने के लिए स्त्रियाँ महत्त्वपूर्ण माध्यम हैं।
- वास्तव में अच्छे संस्कारों वाला समाज पूरी तरह से स्त्रियों पर अवलंबित है।
- प्रत्येक सफल पुरुष के पीछे एक स्त्री का हाथ होता है।
- गृहस्थ जीवन में स्त्रियाँ यश प्रदान करने वाली कुंजी हैं। यदि घर में अच्छी माता तथा अच्छी पत्नी होगी तो ऐसे गृहस्थ जीवन यशस्वी होंगे। (श्रीमद्भागवतम् ४.२९.१५)

ग. उनकी सदैव रक्षा करनी चाहिए।

- स्त्रियाँ कोमल होती हैं तथा सदैव उनका शोषण किया जाता है। अतः सदैव उनकी रक्षा करनी चाहिए।
- मनुष्यों के जनक मनु कहते हैं कि शुद्ध एवं पवित्र रहने के लिए बड़े पैमाने पर स्त्रियों को संरक्षण दिया जाना चाहिए। उसके पश्चात् ही अच्छी प्रजा, समाज में शान्ति तथा सम्पन्नता का निर्माण हो सकता है।
- स्त्रियों का बचपन पिता द्वारा, युवावस्था पति द्वारा तथा वृद्धावस्था पुत्र द्वारा संरक्षित होनी चाहिए। यह अत्यन्त अनिवार्य है।
- तरुण पुत्र को अपनी माता की इतनी अच्छी तरह सेवा करनी चाहिए कि उसे अपने पति की अनुपस्थिति का अनुभव न हो।

घ. 'स्त्रीमुक्ति'

- तथाकथित 'स्त्रीमुक्ति अभियान' के कारण स्त्रियों के और अधिक शोषण होने की संभावना बढ़ती है।
- जब स्त्रियों का संरक्षण नहीं किया जाता तब अनावश्यक संतति की उत्पत्ति होती है तथा नरकमय स्थिति का निर्माण होता है। (भगवद्गीता १.३९-४०)

च. स्त्रियों के गुण

- "लज्जा" स्त्रियों का अतिमानवीय गुण है। यह स्त्रियों को पुरुष का आदर करने के लिए प्रेरित करता है.... इसके लिए स्त्री-पुरुषों को उन्मुक्त रूप से मिलने से रोकना चाहिए..... और इस प्रकार समाज में शुद्धता कायम रखने का प्रयत्न करना चाहिए। (श्रीमद्भागवतम् १.१०.१६/ १.९.२७)
- स्त्रियाँ पुरुषों की प्रेरणा की स्रोत हैं। वास्तव में वें पुरुषों की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली हैं। (श्रीमद्भागवतम् १.९.२६)

४. पति के कर्तव्य एवं दायित्व

क. आध्यात्मिक रूप से प्रगति करना–

- यदि व्यक्ति अपनी पत्नी और संतानों को जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्त न कर सके तो ऐसे व्यक्ति को पति या पिता नहीं बनना चाहिए। (श्रीमद्भागवतम्, स्कन्ध ५)
- पति को भगवान् शिव तथा भगवान् रामचंद्र के पदचिह्नों का अनुसरण करना चाहिए।
- अपनी पत्नी के अलावा अन्य सभी स्त्रियों को माता समझना चाहिए। (चाणक्य पण्डित)

ख. पत्नी की रक्षा करें। (संरक्षण प्रदान करें)

- संरक्षण देने का अर्थ है सभी आवश्यक सुविधायें प्रदान करना। (श्रील प्रभुपाद प्रवचन)
- "जिस प्रकार कोई अपने धन को उचित स्थान पर सुरक्षित रखता है उसी प्रकार व्यक्तिगत रुचि लेकर अपनी पत्नी की देखभाल करनी चाहिए।" (श्रीमद्भागवतम् ४.२९.१७)
- सभी आवश्यक सुविधा जैसे अन्न, वस्त्र, आवास, आभूषण इत्यादि देकर पत्नी को संतुष्ट रखना चाहिए।
- सम्पूर्ण सुरक्षा के लिए सभी आवश्यक सुविधाओं को पूरा करने हेतु थोड़ा बहुत परिश्रम करना पड़े तब भी करें.... यही एक विश्वसनीय पति का कर्तव्य है..... भगवान् श्रीरामचंद्र ने यह अपने उदाहरण से दिखाया है। (श्रीमद्भागवतम् ५.१९.५)
- कर्तव्यदक्ष तथा समर्पित होना आवश्यक है। (श्रीमद्भागवतम् ५.१९.५)
- पत्नी को आध्यात्मिक विषयों में पारंगत करें। उसके लिए स्वयं उत्कृष्ट भक्ति का प्रदर्शन करते हुए सत्वगुण के स्तर पर आयें।

ग. पत्नी के प्रति उचित दृष्टिकोण रखना

- पत्नी इंद्रियतृप्ति का साधन नहीं है।
- "वह मेरी सम्पत्ति न होकर भगवान् श्रीकृष्ण की सम्पत्ति है।"
- अपनी पत्नी को संभालने एवं उसे संरक्षण प्रदान करने में पति को अभिमान होना चाहिए। अपने कर्म के कारण स्त्रियों के लिए मर्यादायें हैं। वास्तव में भगवान् श्रीकृष्ण ही सभी के संरक्षक हैं। अतः पति को नम्र भी होना चाहिए।

५. पत्नी के कर्तव्यः–

क. पत्नी का स्थान

- अर्धांगिनी– "वैदिक शास्त्रों के अनुसार पत्नी पति की अर्धांगिनी है, क्योंकि अपने पति के कर्तव्यों का आधा भाग वही सम्भालती है। (श्रीमद्भागवतम् ३.४.१९)
- इस प्रकार धार्मिक क्रियाकलापों में वे दोनों एक ही हैं।
- अपने पति के योग्य मार्गदर्शन में रहने पर पत्नी सुखी रह सकती है। (श्रील प्रभुपाद प्रवचन)

ख. पत्नी भी पति की रक्षा करती है

- "सभी आश्रमों में गृहस्थ आश्रम सुरक्षित है.... " पत्नी अपने पति को नरक की दिशा में होने वाले पतन से बचाती है। (अधिक जानकारी के लिए देखें श्रीमद्भागवतम् ३.१४.२०)
- आपातकालीन परिस्थिति में वह पति को अच्छी सलाह देती है। (श्रीमद्भागवतम् ४.२६.१६)

ग. पति की निष्ठापूर्वक सेवा करना

- श्रील प्रभुपाद कहते हैं, "अपने पति के प्रति निष्ठावान रहना पत्नी का प्रथम कर्तव्य है।"
- भीष्म पितामह महाभारत में कहते हैं, "अपने पति की सेवा के अतिरिक्त पत्नी को अन्य किसी भी कार्य जैसे यज्ञ, श्राद्ध उपवास आदि करने की आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार दोनों ही स्वर्ग को प्राप्त होते हैं। (यद्यपि भक्त स्वर्ग की कामना नहीं करते हैं फिर भी इस तत्त्व का पालन करना अनिवार्य है।"
- उसे अपने पति के प्रति विश्वस्त होना चाहिए। शान्त स्वभाव तथा सेवक की

भावना उसे शोभा देती है। (श्रीमद्भागवतम् ४.१८.१७)

– उसे पति के प्रति समर्पित होना चाहिए तथा उनसे मीठे वार्तालाप करने चाहिए। (श्रीमद्भागवतम् ४.२९.१५)

– चाणक्य पण्डित कहते हैं, "जिनकी माता तथा संतुष्टि प्रदान करने वाली पत्नी न हो तो उसे घर का त्याग करके वन में चले जाना चाहिए।" (उचित एवं परिपक्व भावना में इस बात को स्वीकार करें।)

– वास्तविक माता का अर्थ है भक्ति तथा वास्तविक पत्नी का अर्थ है समर्पित पत्नी। (श्रीमद्भागवतम् ४.२९.१५)

– पत्नी को उत्साही, गृहकार्य में दक्ष, घरेलू वस्तुओं की स्वच्छता एवं रखरखाव में पारंगत एवं उचित खर्च करने वाली होनी चाहिए।

– अपनी इंद्रियों को नियंत्रित तथा अत्यन्त धीरतापूर्वक सेवा करनी चाहिए।

– उसे अपने पति की आदतों एवं रुचियों के अनुसार व्यवहार करना सीखना चाहिए तथा पति की परिस्थिति का अनुसरण करते हुए व्यवहार करना चाहिए। (श्रीमद्भागवतम् में माता देवहूति का आदर्श)

– अपना पति यदि बड़ा भक्त न हो तब भी पत्नी को पति के मानसिक स्तर को समझकर व्यवहार करना चाहिए।

– उसे अत्यन्त अपनेपन से परन्तु मान-सम्मान देकर सेवा करनी चाहिए। (श्रीमद्भागवतम् में माता देवहूति का आदर्श)

– अपने पति के समक्ष सदैव स्वच्छ तथा सुखी एवं आनन्दपूर्वक रहें। (श्रीमद्भागवतम् १.११.३१)

घ. पति की आध्यात्मिक प्रगति में पत्नी का हिस्सा होता है।

– "...... पत्नी को पति की विश्वसनीय सेविका होना चाहिए तथा पति यदि आध्यात्मिक रूप से प्रगति करेगा तो पत्नी भी आध्यात्मिक जगत् में जाने की पात्र होगी। (श्रीमद्भागवतम् १.६.५५) अन्य उदाहरण–सौभरी मुनि की पत्नी तथा महाराज पृथु की पत्नी अर्ची इत्यादि।

– पत्नी पति पर अवलंबित होती है। यदि पति वैष्णव होगा तो भक्ति में पत्नी को उसका आधा हिस्सा मिलता है क्योंकि वह पति की सेवा करती है। (श्रीमद्भागवतम् ३.२३.१)

– देवहूति द्वारा कर्दम मुनि की की गई सेवा सबके लिए आदर्श है।

– पति के पुण्यकर्म का आधा भाग पत्नी को मिलता है।

– परन्तु, पति पत्नी के आधे पापों का भागी होता है। अतः पति अपनी पत्नी को आध्यात्मिक विषयों पर शिक्षा दे।

– यदि पत्नी आज्ञाकारी नहीं हो तो वह अपना पाप स्वयं भोगती है।

इ. पतिव्रता स्त्री द्वारा प्राप्त अलौकिक सामर्थ्य

- पातिव्रत्य स्त्री का एक बहुत बड़ा अस्त्र है।
- तीन प्रकार की पतिव्रता स्त्रियाँ होती हैं। पतिव्रता, साध्वी तथा सती।
- अरुंधति (रामायण)

  रेणुका, जमदाग्नि की पत्नी (पुराण)

  सावित्री, सत्यवान की पत्नी (पुराण)

  इनकी कथाओं को पढ़ें एवं आदर्श ग्रहण करें।

फ. पतिव्रता स्त्रियों के प्रमुख आदर्श उदाहरण

१. भवानी, भगवान् शिव की पत्नी (श्रीमद्भागवतम्)

२. देवहूति, कर्दम मुनि की पत्नी (श्रीमद्भागवतम् स्कंद ३)

३. अर्चीदेवी, पृथु महाराज की पत्नी (श्रीमद्भागवतम् स्कंद ४)

४. सीता देवी, भगवान् रामचंद्र की पत्नी (रामायण)

५. सुकन्या, च्यवन मुनि की पत्नी (श्रीमद्भागवतम्)

६. अनुसूया, अत्रिमुनि की पत्नी (श्रीमद्भागवतम्, रामायण)

७. विष्णुप्रिया, भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु की पत्नी

८. मंदोदरी, रावण की पत्नी (रामायण)

९. द्रौपदी, पाण्डवों की पत्नी (महाभारत)

६. गृहस्थ आश्रम में यशस्वी होने की कुंजी

- पति-पत्नी के बीच का आकर्षण स्वाभाविक है, परन्तु यदि यह आसक्ति भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति होगी तो दोनो ही कृष्णभावनाभावित होंगे तथा पारिवारिक जीवन सफल होगा। (श्रीमद्भागवतम् ३.३१.४२)
- भगवान् श्रीकृष्ण पारिवारिक जीवन के केंद्र होने चाहिए।
- पति-पत्नी एक साथ भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा के लिए गृहस्थ आश्रम में संबंध बनाकर रहें।
- गृहस्थ अपने जीवन में भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु के पार्षद–श्रीअद्वैत प्रभु, शिवानन्द सेन, श्रीवास पण्डित, रामानन्द राय, पुण्डरीक विद्यानिधि आदि का आदर्श स्थापित करें।

संस्कार

संस्कार शब्द का अर्थ है 'शुद्धिकरण की विधि'

जन्मना जायते शूद्रः संस्कारात भवेद्विजः ।

"जन्म से प्रत्येक मनुष्य शूद्र होता है; परन्तु संस्कार से वह द्विज या ब्राह्मण बनता है।" महाभारत (शान्तिपर्व) के अनुसार कुल अड़तालीस संस्कार होते हैं। कुछ लोगो के मतानुसार उनमें से सोलह प्रमुख हैं। तो कुछ के मतानुसार दस संस्कार प्रमुख हैं। श्रील गोपालभट्ट गोस्वामी ने वैष्णवों के लिए आवश्यक दस संस्कारों के विषय में "सत् क्रिया सारदीपिका" नामक पुस्तक में लिखा है तथा श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर के मतानुसार वैष्णवों के लिए यह एकमात्र अधिकृत पुस्तक है।

संस्कार के लाभ

- संस्कार करने से वर्णाश्रम धर्म को पुनर्स्थापित किया जाता है। संस्कारों के अभाव में समाज में उत्पात हो सकता है। भागवत धर्म में बताये गये वैष्णव वेदान्त के सांस्कृतिक तथा सामाजिक मूल्यों की स्थापना की जा सकती है, जिससे भागवत धर्म को असंख्य लोगों द्वारा स्वीकार किया जा सके।
- संस्कार द्वारा प्रत्येक जीव का प्राथमिक स्तर पर शुद्धिकरण हो सकता है जिससे मनुष्य भक्ति मार्ग में अधिक प्रगति कर सकता है। वर्तमान कलियुग में भी संस्कार की प्रक्रिया के द्वारा उत्तम संतति को जन्म दिया जा सकता है। इस प्रकार वर्णसंकरों की संख्या कम होकर भागवत धर्म के प्रचार में सहायता हो सकती है। प्रत्येक संस्कार के आचरण में युगधर्म हरिनाम संकीर्तन अपरिहार्य है।
- संस्कार के द्वारा पति-पत्नी, बच्चे, माता-पिता, मित्र-परिवार, गुरुभाई/बहन, गुरु-शिष्य, मनुष्य-देवता इनके संबंधों में पवित्रता आती है।
- इसके अलावा दृश्य तथा अदृश्य दुष्ट शक्तियों का प्रभाव नष्ट होता है तथा ऋषि, देवता एवं साक्षात् परमेश्वर की कृपा प्राप्त होती है।

सामान्य रूप से संस्कार विधि में गणेश, नवग्रह, दुर्गा, इंद्र, चंद्र इत्यादि देवताओं की पूजा की जाती है; परन्तु श्रील गोपालभट्ट गोस्वामी कृत ग्रंथ में इन सभी देवी-देवताओं की अपेक्षा भगवान् श्रीकृष्ण अथवा उनके भक्तों की पूजा करने की विधि बताई गई है। इससे प्रत्येक संस्कार के माध्यम से केवल कृष्णभावना का विकास होने में सहायता मिलती है।

श्रील गोपालभट्ट गोस्वमी के कथनानुसार दस प्रमुख संस्कार निम्नलिखित हैं–

१. विवाह

विवाह शब्द का अर्थ है उद्धार, पालन-पोषण। इस संस्कार के प्रभाव से मनुष्य वैवाहिक जीवन के ध्येय को जान सकता है। वह अपनी पत्नी तथा बच्चों का अज्ञान से

उद्धार कर सकता है। इस संस्कार में कन्यादान, पाणिग्रहण, अश्माक्रमण, सप्तपदी ऐसी अनेक विधियों का समावेश होता है।

२. गर्भाधान संस्कार

जीव के शुद्धिकरण की विधि का आरम्भ उसके जन्म से पूर्व ही होता है। और इन विधियों में से सर्वप्रथम विधि है गर्भाधान। गर्भाधान द्वारा स्त्री-पुरुष के संयोग का शुद्धिकरण होता है। यह संस्कार बुद्धिमान्, पुण्यशील तथा गुणवान् संतान प्राप्त करने के लिए है।

श्रील प्रभुपाद के कथनानुसार गर्भाधान संस्कार के पहले पति-पत्नी को हरे कृष्ण महामंत्र की पचास माला का जप करना चाहिए तथा विविध सेवा द्वारा जितना संभव हो उतना अधिक कृष्णभावनाभावित होने का प्रयत्न करना चाहिए।

इस संस्कार में स्थान, काल, परिस्थिति की योग्यता-अयोग्यता का विचार करना आवश्यक है। इसमें पुंसवन नामक पुत्र प्राप्ति के उद्देश्य से की जाने वाली विधि का समावेश है।

३. सीमांतोन्नयन संस्कार

गर्भवती स्त्री को मानसिक रूप से शान्त तथा सुखी करने के लिए यह संस्कार किया जाता है। इसके द्वारा गर्भवती स्त्री के मन को विचलित करने वाली सभी दुष्ट शक्तियों को दूर किया जाता है। इसके साथ ही बच्चे को सद्बुद्धि प्राप्त होती है। यह संस्कार चौथे, छठे अथवा आठवें महीने में किया जाता है।

इस संस्कार में पति एक विशेष प्राणी के बालों से पत्नी के मस्तक पर स्थित माँग (जिसमें स्त्रियाँ सिन्दूर सजाती हैं) को स्पर्श करता है। इस बाल का प्रयोग करने का कारण यह है कि अन्य किसी भी प्राणी के बालों की अपेक्षा यह बाल सबसे अधिक लंबा है। इससे वह वैश्विक शक्ति ग्रहण करके स्त्री को दे सकता है तथा स्त्री वह शक्ति बच्चे को देती है। इसमें सोष्यन्ती होम नामक विधि है जो बच्चे के सुलभ (आसान) जन्म के लिए की जाती है।

४. जातकर्म संस्कार

इस संस्कार को मेधानज संस्कार भी कहा जाता है तथा बच्चे को अच्छी बुद्धि प्राप्त हो इस हेतु यह संस्कार किया जाता है। बच्चे के जन्म के पश्चात् तथा बाल काटने के पूर्व यह विधि की जाती है।

इस विधि में 'मिष्क्रामण' अर्थात् बालक का इस संसार से जब सर्वप्रथम संपर्क होता है उस समय उस सपंर्क का शुद्धिकरण करने के लिए इस संस्कार को किया जाता है।

५. नामकरण संस्कार

यह एक महत्त्वपूर्ण संस्कार है। शास्त्रों के अनुसार बालक को दिया गया नाम बालक की दुष्ट शक्तियों से रक्षा करता है। इसलिए यह नाम भगवान् अथवा उनके शुद्ध

भक्तों के नाम पर दिया जाना चाहिए। यह संस्कार बालक के जन्म के बाद १०, ११, १२, १०१ दिन अथवा एक वर्ष के बाद अथवा पूर्णिमा जैसी शुभ तिथि को किया जाता है।

इस संस्कार में 'पौष्ठी कर्म' विधि की जाती है जिससे बच्चे को अच्छा आरोग्य प्राप्त हो सके।

६. अन्नप्राशन संस्कार

यह संस्कार बच्चे को अन्न का पहला कौर खिलाने के लिए किया जाता है। लड़के के छठे अथवा आठवें महीने में तथा लड़की के पाँचवें, सातवें अंथवा नौंवे महीने में यह विधि की जाती है। इस प्रसंग में बच्चों को भगवान् का अथवा शुद्ध भक्त का महाप्रसाद खिलाया जाता है। इसमें कर्णबेध अर्थात् सोनार से कान छिदवाने की विधि का भी समावेश होता है। कान छिदवाने की यह विधि एकादशी के दिन को छोड़कर अन्य किसी भी शुभ दिवस पर दोपहर के समय की जाती है।

७. मुण्डन संस्कार

सर्वप्रथम बाल काटने अथवा बाल निकालने की इस विधि को जावड़ (जन्म के समय का अवशेष) निकालना भी कहा जाता है। यह संस्कार सामान्य तौर पर तीसरे अथवा पाँचवें वर्ष में किया जाता है। इसमें बालक के सिर का मुण्डन करके ब्रह्मरंध्र के पास छोटी सी शिखा रखी जाती है।

८. विद्यारंभ संस्कार

इस संस्कार के द्वारा बच्चे की शिक्षा आरम्भ होती है। जिस समय लड़के की आयु चार वर्ष चार महीने तथा लड़की की आयु पाँच वर्ष चार महीने की होती है उस समय यह संस्कार किया जाता है।

९. उपनयन संस्कार (यज्ञोपवीत संस्कार)

वैदिक परंपरा में गुरु के आश्रम में जाने से पूर्व इसे ही दीक्षा लेना कहा जाता है। आध्यात्मिक जीवन में प्रगति करने के लिए इस संस्कार का प्रत्येक व्यक्ति पर होना अनिवार्य है। अंतर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ के नियमानसुार दीक्षा लेने के लिए चार नियमों का पालन एवं हरे कृष्ण महामंत्र की सोलह माला का जप करना आवश्यक है।

१०. अंत्येष्ठि क्रिया

यह शरीर से संबंधित शुद्धिकरण की अंतिम क्रिया (संस्कार) है। जीव को शरीर से अनासक्त करना, भूत-प्रेत योनि में जाने से बचाने तथा उच्च लोकों में प्रगति करने के लिए इस संस्कार को किया जाता है। यदि संभव हो तो किसी की मृत्यु के पूर्व उसके मुख में तुलसी का पत्ता, गंगाजल इत्यादि डालें। मृत्यु के पश्चात् शरीर को स्नान करवायें, तिलक लगायें तथा भगवान् को अर्पित किया गया हार पहनायें। मस्तक पर चंदन से भगवान् का नाम लिखें। गंगा, यमुना इत्यादि पवित्र नदियों का जल शरीर पर

छिड़कें तथा सम्पूर्ण शरीर को हरिनाम चादर से ढकें। तीन दिनों के पश्चात् मृत व्यक्ति की याद में श्रद्धांजलि अर्पित करें।

सूतक काल के विषय में कहा गया है कि ब्राह्मण दस दिन, क्षत्रिय बारह दिन, वैश्य पंद्रह दिन तथा शूद्र को तीस दिनों तक सूतक का पालन करना चाहिए। परन्तु किसी भी परिस्थिति में हरिनाम का जप नहीं रोकना चाहिए।

टिप्पणी:– यहाँ संस्कारों के बारे में केवल जानकारी दी गई है। उनकी विस्तृत विधि के लिए 'संस्कार', 'हरिभक्तिविलास' अथवा 'सत्क्रिया सार-दीपिका' इन ग्रंथों का आधार लें।

---- हरे कृष्ण ---